ब्रह्मविद्या

॥ स्वामिश्रीजी ॥

ब्रह्मविद्या

[मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी की
प्रकरण 1 से 5 तक की विशिष्ट बातों का हिन्दी अनुवाद]

गुरूहरि प.पू. काकाजी महाराज साक्षात्कार स्वर्णजयंती प्रकाशन

ब्रह्मविद्या

साक्षात्कार स्वर्णजयंती प्रकाशन

© *प्रकाशक :*

योगी डिवाईन सोसाईटी, दिल्ली

‘ताड़देव’, काकाजी लेन, स्वामिनारायण मार्ग,
अशोकविहार-III, दिल्ली-110 052 (भारत)

प्रथम आवृत्तिः

साक्षात्कार स्वर्णजयंती,

31 मार्च, 2002

प्रति : 2000

मूल्य : रु. 50/-

टाईप सेटिंग :

अक्षरज्योति

78, शक्ति एपार्टमेन्ट्स, स्वामिनारायण मार्ग,
अशोकविहार-III, दिल्ली-110 052 (भारत)

मुद्रक :

रेप्स कम्यूनिकेशन्स

210, लक्ष्मी चैम्बर्स, C-159,
नारायणा इन्डस्ट्रीयल एरिया-I,
दिल्ली-110 028

आमुख

- ...यह ज्ञान तो फिरंगी की तोप जैसा है और उसके मुकाबले दूसरों का ज्ञान तो पटाखों जैसा है...(प्र.1-47)
- शरीर सूखा दो, अन्न खाना छोड़ दो, वन में चले जाओ या घर छोड़ दो इसकी अपेक्षा ये साधु की बात सुननी, वह अधिक है और ये तो पुरुषोत्तम के वचन हैं और गुणातीत बातें हैं। इन बातों से तो अक्षरधाम दिखाई पड़ता है। अक्षरधाम और मुक्तों को लेकर भगवान ऐसे के ऐसे ही आए हैं, उसमें फर्क नहीं समझना चाहिए पर महिमा समझ में नहीं आता इसलिए जीव दुर्बल रहता है। (प्र. 1-132)
- ये बातें तो जादू हैं, जो सुने वह पागल हो जाए ! पागल क्या? तो उसे जगत मिथ्या हो जाए। फिर उसे सयाना कौन कहेगा? (प्र.1-137)
- ऐसी बातें दूसरी कोई जगह नहीं होतीं, ये तो अक्षरधाम की बातें हैं, भगवान की हैं, नारायण की हैं... (प्र. 4-35)
- सत्संग तो बाद में दस हज़ार गुणा बढ़ेगा, पर यह साधु और ये बातें नहीं मिलेंगी... (प्र. 4-52)
- ...ये बातें तो दोबारा जन्म नहीं होने दें ऐसी हैं। (प्र. 4-53)
- ये बातें सौ जन्म में भी कही ना जाए और समझ में भी नहीं आएं, ऐसी हैं। (प्र. 5-223)
- ये तो कोई बातें हैं ! यह तो अमृत है ! जीव देवलोक में अमृत पीने जाता है, परंतु यहां पीने के लिए फ़ारिग़ नहीं होता है ! (प्र. 6-221)

साधुता व दासत्व की पराकाष्ठा का जिसके जीवन में हर पल दर्शन होता था,
महाराज के होते हुए और उनके बाद भी अपनी ब्राह्मीशक्ति का
सर्वोपरि सामर्थ्य छुपा रखने में ही जिन्होंने बड़प्पन माना,
फटी हुई धोराजी की गुदड़ी को ही जिन्होंने जायदाद गिना,
ऐसे अजोड़ साधु मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी द्वारा करी बातों के लिए
उनके ही उपरोक्त उद्गार हैं, तो वे बातें कैसी होंगी?
अपनी ही बातों को ऐसा साधु इतनी अहमियत दे,
तो हम विचारें कि इन बातों का जरूर कुछ विशिष्ट मूल्य होगा ही।
सदा मितभाषी ही रहने वाले,
निर्जन एकांत ही जिन्हें पसंद हो,
ध्यान का ही जिनका अंग हो,
सेवा का ही जिन्हें इश्क हो,

केवल महाराज की मूर्ति की ही जिन्हें आसक्ति हो,
अति तीव्र वैराग्य यही जिनकी जीवनशैली हो,
मंदिर के सभी क्रियायोग भी जिन्हें 'कारखाने' लगते हों
ऐसा साधु - ऐसी विभुति को
महाराज ने मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी को जूनागढ़ मंदिर की जिम्मेदारी सौंपी और
200 साधुओं को रखने की जबरन् आज्ञा करी !
इन साधुओं को स्वामी ने जो बातें करी उसका सामर्थ्य कैसा है, वह बताते हुए स्वामी ने दसवें प्रकरण की 290वीं बात में स्वयं कहा कि–
'200 जनों को मैंने ब्रह्मविद्या पढ़ाई है, वह एक-एक मेरे जैसा कल्याण करेगा।'
जरा सोचें कि शिष्यों में अपने जैसा ही सामर्थ्य प्रगटा सकते हों, वे गुरु कैसे और वह ब्रह्मविद्या भी कैसी?

और... तभी तो श्रीजी महाराज ने आचार्य महाराज एवं सद्. गोपाळानंदस्वामी जैसे बड़े संत और सत्संग के वड़ीलों को भी हर वर्ष एक महीना जूनागढ़ जाकर समागम करने की आज्ञा करी थी। श्रीजी महाराज ने यहां तक कहा था कि– जूनागढ़ जाकर जो समागम करेगा, उसकी सौ जन्म की कसर हम एक ही जन्म में टाल देंगे।
एक बार स्वामी ने महाराज को पूछा कि ध्यान करना, बीमारों की सेवा करनी, आत्मारूप रहना और बातें करनी–इन चार में से अधिक क्या है? महाराज ने 'बातें करनी' अधिक बताया। उस दिन से स्वामी ने रात-दिन बातें करने में किसी प्रकार से कोई कसर नहीं छोड़ी थी !

शुरुआत में ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज से
और
उनके बाद गुरुहरि प.पू. काकाजी महाराज के मुख से जैसे-जैसे इन बातों का लाभ मिलता गया और उनके समागम से इन बातों के अभ्यास की आदत पड़ती गई, वैसे-वैसे इन बातों की गहराई को समझते गए। जीवप्राणी मात्र के इन्द्रियों एवं अंतःकरण की सीमाओं से पार की ये बातें सचमुच आत्मा का अमृत हैं।

योगीबापा कई बार कहते कि 'सीखने जैसी तो सिर्फ ब्रह्मविद्या है' और प.पू. काकाजी भी बार-बार यही बात दोहराते थे। प्र. 9 की 243वीं बात में स्वामी ने भी सभी विद्याओं में ब्रह्मविद्या को ही विशेष महत्त्व दिया है इतना ही नहीं, बल्कि ब्रह्मविद्या की सिद्धि प्रगट सत्पुरुष के समागम और आशीर्वाद से ही होती

है, इस बात का भी प्रतिपादन किया है। 'स्वामी की बातें' के पन्ने-पन्ने पर
सत्पुरुष का संग,
भगवदी में सुहृद्भाव,
आज्ञा और उपासना का महत्त्व,
तीन देह से पृथक् होकर भजन करने की रीत,
ज्ञान द्वारा स्थिति करनी
और
दासत्वभाव जैसे गुणातीत ज्ञान के कई रहस्यों और करामातों का उल्लेख है। 'समाधि' से भी अधिक कथावार्ता सुन कर ज्ञानी भक्त बनने पर ही उन्होंने विशेष भार दिया है (प्र.11-284,285)। और... आग्रह रख कर कथावार्ता में जो मन रखेगा उसे आज ही 'आत्यंतिक ज्ञान' सिद्ध हो जाएगा, ऐसी आश्चर्यकारक गारंटी भी दे दी है (प्र.11-168) ! सच्चे गुणातीत साधु होने की मूलभूत भावना ज़रा भी गौण ना हो, उसकी लालबत्ती भी जगह-जगह उन्होंने रखी है।

प.पू. काकाजी महाराज जब-जब कथावार्ता करते और खास करके शिविरों में हमने उन्हें सुना है, तो उनकी हर एक बात वचनामृत एवं स्वामी की बातों का ठोस आधार लेते हुए ही होती थी... कई बार तो वे अपनी लाक्षणिक भाषा में कहते भी कि– मेरी कोई भी बात तुम्हें महाराज के व स्वामी की बातों के सिद्धांत से अलग नहीं मिलेगी। अब जैसे कम्प्यूटर का बटन दबाने पर कोई भी जानकारी हमें स्क्रीन पर तुरंत मिल जाती है, ठीक इसी प्रकार हर एक विषय को प.पू. काकाजी वचनामृत तथा स्वामी की बातों का नंबर समेत संदर्भ देकर समझाते...सच, स्वामी की बातों के नंबर इस कक्षा पर कंठस्थ होने और उन बातों का हार्द यथार्थ रीत से तत्काल बता देना, वह स्वयं गुणातीत पुरुष के सिवा शक्य हो ही नहीं सकता।

गुरुहरि प.पू. काकाजी कई बार कहते कि ज्ञान यानि केवल 'जानना' वह नहीं, बल्कि ज्ञान यानि 'सत्पुरुष के साथ का आध्यात्मिक संबंध' ! **'ज्ञान' का अंत सत्पुरुष** ! बड़े पुरुष के साथ ऐसा अनन्यभाव का आध्यात्मिक संबंध हो, तो ही उनके गुण शिष्य में आते हैं। सो ही, घुमा-फिरा कर सत्पुरुष का सेवन करने पर स्वामी आग्रह रखते थे। प्रकरण 11 की 12वीं बात में तो व्यवहार का ज्ञान, भगवान के मार्ग का ज्ञान, सांख्य - योग उपासना वग़ैरह का ज्ञान पाने के लिए सर्वदेशीय पुरुष के समागम पर ही अधिक भार दिया है। ऐसे सत्पुरुष का समागम करने की रीति भी इन बातों में देखने को मिलती है। प्रकरण 3 की 34वीं बात में साफ-साफ बता दिया है कि ऐसे सत्पुरुष को निर्दोष समझे, सर्वज्ञ जाने और उनके साथ किसी भी प्रकार से पर्दा ना रखें - तो सत्पुरुष के गुण

मुमुक्षु में आते हैं। प्रकरण 11 की 42वीं बात के मुताबिक 'रुपया खर्च करने पर भी साधु का ज्ञान पा नहीं सकते' यह कह कर ऐसे सत्पुरुष का समागम करने पर ही भार दिया है।

गुरुहरि प.पू. काकाजी ने हम सब पर अत्यधिक कृपा करके 'गुणातीत ज्ञान' की ऐसी रहस्यमय चाबियां और पेचीदा करामातें स्वामी की बातों के आधार पर अनेक बार हमें समझाई हैं,

उसके लिए खुद उन्होंने भजन किया है–कराया है,

प्रायश्चितरूप प्रार्थना खुद करते रहे हैं और हमसे भी करवाई है।

उनके समग्र जीवन का सार ही गुरुभक्ति, गुणातीत ज्ञान, साधुता का कसब और माहात्मययुक्त निष्ठा एवं सेवा में सिमट जाता है। आख़िर तक उन्होंने यही बात केन्द्रस्थान में रखी थी।

हमारी पात्रता, हमारी मानसिक तैयारी या अवस्था या मन की चालाकियां या छुपी हरकतें वग़ैरह कुछ भी गिने बिना भजन व कथावार्ता से उन्होंने जो करुणा बरसाई है, उसका हम कैसे ऋण चुका पाएंगे? अरे ! चुकाने की बात तो दूर, परंतु उसका यथार्थ मूल्य भी यदि समझ पाएं तो भी मन, वाणी, विचार बिलकुल बंद होकर स्तब्ध हो जाते हैं, इस कक्षा पर वो बरसे हैं।

तो, ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी के साक्षात्कार की स्वर्णजयंती के मंगल पर्व पर 'स्वामी की बातें' इस हिन्दी संकलन का वाचन, मनन, निदिध्यासन करके प्रगट सत्पुरुष के चरणों में गरजु बन कर, तीर्थवासी होकर-समागम करके उसके हार्द को पाएं व गुणातीत ज्ञान और सच्ची गुणातीत स्थिति वाली साधुता को जीवन का एक मात्र ध्येय बनाएं। यही प्रार्थना व अभीप्सा के साथ सत्संग समाज के सभी हरिभक्तों और खास तो ऐसे मरजीवा समान साधक मुक्तों को यह प्रकाशन अर्पण करते हुए कृतज्ञता अनुभव कर रहे हैं।

साधु मुकुंदजीवनदास व हेमंत मर्चंट के
स्वर्णजयंती निमित्त
हार्दिक जय स्वामिनारायण !

आभार

मूल गुजराती भाषा में लिखी **'स्वामी की बातों'** को प.पू. गुरुजी जब हिन्दी में समझाते थे, तब कई मुक्तों के मन में सहज ही विचार उठता था कि काश ! ये बातें हिन्दी में होती तो कितना अच्छा रहता?

भक्ति अदा करने की उमंग व उत्साह से उत्तर भारत के मुक्तों के लिए जब प.पू. काकाजी की **'साक्षात्कार स्वर्णजयंती'** मनाने का बीड़ा **प.पू. गुरुजी** ने उठाया, तो संकल्प उठा कि एक शिविर के रूप में ही जब स्वर्णजयंती मना रहे हैं, तो–'स्वामी की बातें' भी साथ-साथ हिन्दी में प्रकाशित कर ली जाएं। इस भावना को हाथ-पाँव देने खूब कम समय होते हुए भी, प.पू. काकाजी का बल लेकर इस कार्य का प्रारंभ किया, जो अब आपके हाथ में पाँच प्रकरण के रूप में दे रहे हैं।

प.पू. काकाजी के दिव्य मानसपुत्र और हमारे प्रिय **प.पू. गुरुजी** प.पू. काकाजी के **'साक्षात्कार स्वर्णजयंती'** पर अपनी 'गुरुभक्ति' अदा करने व मुक्तों के लिए आदर्श स्थापित करने में पीछे नहीं रहे... पहले 'निमंत्रण कार्ड' के लिए खुद कम्प्यूटर पर बैठ-बैठ कर सारा सेटिंग कराया। बाद में, अनेक प्रवृत्तियों में घिरे होने के बावजूद और तबियत अच्छी ना होते हुए भी एक अदना सेवक की भाँति प.पू. गुरुजी ने इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए ज़रा भी विश्राम किए बिना दिन-रात एक-एक शब्द की प्रूफ चेकिंग तक का अत्यधिक परिश्रम लिया है। बातों से नहीं, बल्कि अपने वर्तन से उन्होंने गुरुभक्ति अदा करने का एक अद्‌भुत आदर्श हमारे लिए रखा है, जिसके लिए उन्हें कोटि-कोटि वंदन ! सो, सर्वप्रथम तो प.पू. काकाजी की **'साक्षात्कार स्वर्णजयंती'** पर **प.पू. गुरुजी** के चरणों में हमारी अंतर की प्रार्थना है कि आपके जैसी **'गुरुभक्ति'** हममें भी प्रगटे... ऐसा संकल्प आप हमारे लिए जरूर करना !

प.पू. गुरुजी को एकमात्र प्रसन्न करने के लिए अत्यधिक भक्तिभाव से **पू. अक्षरस्वरूपस्वामी, पू. आशिष, प.भ. संजीव सबरवालजी व प.भ. हरिशजी** ने पुस्तक के मुख पृष्ठ के चित्रांकन से लेकर काग़ज़, छपाई इत्यादि की हृदयस्पर्शी सेवा द्वारा प.पू. गुरुजी की प्रसन्नता ले ली है।

इससे अतिरिक्त **प.भ. लक्ष्मीनारायण शुक्ला** व **प.भ. आर. के. अग्रवालजी** ने दिन-रात देखे बिना पुस्तक की टाईप सेटिंग एवं प्रूफ चेकिंग करके 'स्वर्णजयंती' की अद्‌भुत सेवा का मौका लूट लिया है। उनके इस सहयोग के बिना इस प्रकाशन में विलंब हो जाता।

'स्वामी की बातें' का संकलन मूलतः गुजराती भाषा में '14 प्रकरण' के रूप में उपलब्ध है। उत्तर भारत के मुमुक्षुओं के लिए फिलहाल उन 14 प्रकरणों में से 1 से 5 प्रकरण तक की विशिष्ट बातों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। यूं इन बातों का क्रम 14 प्रकरण की 'स्वामी की बातों' में से लिया है।

इसकी हिन्दी हस्तलिपि तैयार करने में **'अक्षरज्योति'** की बहनें—**प.पू. दीदी** व **पू. बंसरीदीदी** ने गुजराती भाषी ना होते हुए भी, इन बातों को समझ कर उसका हार्द ज्यों का त्यों रख कर अत्यधिक लगन से **सुंदर और सरल** जो **हिन्दी अनुवाद** किया है, उसके लिए उनका यह सौजन्य कभी नहीं भूला पाएंगे।

योगी डिवाईन सोसाईटी की ओर से –
प्रभाकर राव व राकेश शाह के
हार्दिक जय स्वामिनारायण !

प्रकरण–1

✷ भगवान और साधु की महिमा की बातें निरंतर करनी और सुननी। महाराज तो अपना अक्षरधाम, पार्षद एवं अपना समग्र ऐश्वर्य लेकर यहां धरातल पर आए हैं। वे अब भी वैसे ही हैं। देह को छोड़ कर हमें जिन्हें प्राप्त करना है, वे आज हमें जीतेजी प्राप्त हुए हैं; अब कुछ पाना शेष नहीं है। यह नहीं समझते, इसलिए जीव में निर्बलता रहती है। यदि ऐसा समझा जाये तो कभी भी जीव में निर्बलता मानी ही नहीं जाएगी और जीव का पूरा स्वरूप ही बदल जाएगा। अतः (भगवान और साधु की) महिमा समझने जैसा और कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है। 'महिमा' के अतिरिक्त कितने ही साधन करो, पर जीव बल को नहीं पाएगा और ऐसी महिमा तो भगवदी के प्रसंग (समागम) से ही समझ में आती है। इसके सिवा ऐसी महिमा नहीं समझी जा सकती है।

प्रकरण : 1-1

✷ प्रहलाद्‌जी ने नारायण के साथ कई दिन तक युद्ध किया, किन्तु वे भगवान को जीत नहीं सके। तब भगवान ने प्रहलाद्‌जी से कहा–

'युद्ध से तो तुम मुझे जीत नहीं पाओगे। मुझे जीतने का उपाय तो यह है कि जीभ से मेरा भजन करना, मन से मेरा चिंतन करना और नेत्र में भी मेरी मूर्ति रखना। इस प्रकार निरंतर मेरा स्मरण करना।'

बाद में प्रहलाद्‌जी ने इस प्रकार अभ्यास किया, तब छः मास में भगवान उनके वश में हो गए। अतः भगवान को प्रसन्न करने का यह सर्वोपरि उपाय है, वह सीखना।

प्र. 1-3

✷ भगवान की महिमा जिसके अंतर में समझ में आ गई हो, उस पर चाहे कैसी भी कठिनाई आ पड़े या तो देह में चाहे कैसी भी बीमारी आ जाए, फिर भी वह यही समझेगा कि भगवान की मर्जी के बिना तो सूखा पत्ता भी किसी के हिलाने से हिलता नहीं। यूं समझ कर वह सुखी रहेगा और जो ऐसा नहीं समझता हो, उस पर यदि किसी प्रकार की कठिनाई आ जाए तो उसका सत्संग डांवाडोल हो जाता है–बिगड़ जाता है।

प्र. 1-4

✷ यह जीव साधन तो क्या करेगा ? यह तो रेंट जोड़ कर फसल करने जैसा कठिन काम है, क्योंकि उस फसल को पशु खा जाएं, पक्षी खा जाएं। यूं साधन करके कल्याण पाना यह ऐसी बात है, जबकि भगवान की प्राप्ति से तो जैसे सारी पृथ्वी पर जब बारिश गिरे व फसल पकती है, फिर उसे पशु खाएं, पक्षी खाएं, चोर चुरा कर ले जाएं तब भी खूटेगी नहीं और कुएं और तालाब व नदियों का पानी खूट सकता है, पर समुद्र कभी नहीं खूटता, वैसे ही भगवान द्वारा कल्याण होना ऐसी बात है व यह तो बहुत दुर्लभ है, पर महिमा समझी नहीं जाती।

प्र. 1-5

✷ संसार छोड़ कर जो त्यागी हुआ हो, वह तो दुःखमात्र को टाल कर सुखी हो जाता है। पर त्यागी होने के बाद भी वासना का दुःख रहता है। वह वासना लोभ की, काम की, स्वाद की, स्नेह की और मान की है। जैसे-जैसे वासना टाले, वैसे-वैसे वह सुखी हो जाता है।

प्र. 1-9

✷ खूबसूरत स्त्री, अधिक धन और अच्छा मकान मिल जाये, उससे सत्संगी को भी माया का बंधन हो जाता है, क्योंकि इनमें से फिर जीव निकल ही नहीं पाता। सो यह तो जैसा-वैसा साधारण मिले वही ठीक है।

प्र. 1-11

✷ (हम में) दोष रहते हैं और (प्रयत्न से भी) वे टलते नहीं हैं। तो क्या ये दोष केवल दोष ही हैं या इसमें कुछ गुण भी हैं ?—यह प्रश्न है। इसका उत्तर यह है कि—
दोष के चुभने से हम सत्संग में दीन आधीन रहते हैं,
सत्संग की हमें गरज रहती है
और
भगवान की स्तुति (प्रार्थना) होती रहती है।
दूसरी ओर दोष का क्लेश रहने से (भगवान के स्वरूप का) ज्ञान होता है। यदि दोष न हो तो ऐसी गरज रहेगी नहीं। अतः इसमें भी गुण है।

प्र. 1-12

✷ करोड़ों काम बिगाड़ कर भी एक मोक्ष सुधार लेना। यदि करोड़ों काम सुधारे भी, किन्तु एक मोक्ष बिगाड़ा तो किया ही क्या ?

प्र. 1-14

✷ भगवान ने कहा है कि मैं 'सत्संग' से जितना वश में होता हूँ, इतना तप, यज्ञ, योग, व्रत, दान आदि साधनों से नहीं होता हूँ।
वह 'सत्संग' क्या है ?

तो, बड़े एकांतिक संत को हाथ जोड़ना और वे कहें वैसा करना यही 'सत्संग' है।

प्र. 1-17

✷ करोड़ों रुपये खर्चने पर भी ऐसे साधु नहीं मिल पाएंगे और करोड़ों रुपये देने पर भी ऐसी बातें सुनने-समझने को नहीं मिलेंगी। करोड़ रुपये देने पर भी ऐसी मनुष्य देह नहीं मिलती है और हमने भी करोड़ बार जन्म लिया है तब भी ऐसा (संबंध) योग नहीं हुआ है। यदि हुआ होता, तो अबकी (दोबारा) देह क्यों धारण करनी पड़ती ?

प्र. 1-19

✷ मोक्ष के दाता तो केवल भगवान और साधु ये दो ही हैं। वैराग्य विषयों से वैर कराये परन्तु भगवान का काम करता नहीं है व आत्मनिष्ठा सब में से प्रीति (लगाव) तुड़वाये परंतु भगवान का काम नहीं कर सकती, इसी तरह धर्म रखने से सुखी तो रह सकते हैं, परंतु उससे भगवान का काम नहीं हो सकता। इसलिए मोक्ष के दाता तो भगवान व साधु ये दो ही हैं। सो, उनमें दोष नहीं देखना।

प्र. 1-20

✷ भगवान तो अपने भक्त की रक्षा करने के लिए सदैव तत्पर हैं। कैसे? जैसे पलकें आँख की रक्षा करती हैं, हाथ कंठ की रक्षा करते हैं, माँ-बाप बच्चों की रक्षा करते हैं और राजा प्रजा की रक्षा करता है–ठीक उसी प्रकार भगवान हमारी रक्षा में हैं।

प्र. 1-22

✷ पाँच-दस बार भी कोई जाने-अनजाने में 'स्वामिनारायण' नाम लेगा, उसका भी हमें कल्याण करना होगा और सारे ब्रह्मांड को सत्संग कराना है।

प्र. 1-24

✷ मायामय जो भी सुख दिखाई पड़ता है, वह दुःख बिना का हो ही नहीं सकता। यह बात भी जरुर समझ रखना।

प्र. 1-25

✷ विषय सुख से अधिक आत्मिक सुख है और इससे भी अधिक भगवान का सुख है और वो तो चिंतामणि है।

प्र. 1-26

✷ हीरा किसी भी प्रकार से फूट नहीं सकता, किन्तु खटमल के खून से फूटता है। यूं वासना भी किसी प्रकार से टलती नहीं है, किन्तु बड़े संत की आज्ञा में रहने

से, इनके प्रति सद्भाव रखने से और इनकी हर एक क्रिया जँचाने से वासना टलती है। साधन तो सौभरी ऋषि आदि के कैसे थे ? किन्तु वासना टली नहीं।
प्र. 1-28

✷ सत्संग मिल भी जाए परन्तु संग किए बिना सत्संग का सुख नहीं आएगा। वह किस प्रकार ? तो जैसे खाना मिले, परन्तु खाये बिना पेट नहीं भरता, वैसे ही कपड़े-गहने मिल जाएं, परन्तु पहने बिना उसका सुख नहीं मिलता। ठीक उसी प्रकार संग बिना सत्संग का सुख नहीं आ पाएगा।
प्र. 1-29

✷ ऐसे संत का मन में स्मरण करने से मन के पाप जल जाते हैं, इनकी कथा सुनने से कान के पाप जल जाते हैं और दर्शन करने से आँख के पाप जल जाते हैं—यूं माहात्मय समझना।
प्र. 1-30

✷ त्याग, वैराग्य, नियम और धर्म की कुछ बातें करके बोले कि—त्याग, वैराग्य की क्या अहमियत है ? कैसी भी जीवात्मा हो, भगवान के भक्त में जिसे आत्मबुद्धि हो वही सत्संगी है और इसके बिना तो चाहे कोई कितनी ही भक्ति करता हो तब भी क्या ? अतः 'भगवान के भक्त में आत्मबुद्धि'—ही सत्संग है। वो सत्संग तो रात्रिप्रलय तक करेंगे तब होगा और तब उसे विपरीत माहौल स्पर्श ही नहीं कर पाएगा। ऐसा सत्संग करना है।
प्र. 1-32

✷ औरों से लक्ष्मीजी की समझ अधिक कही जाए, क्योंकि उन्हें भगवान में निर्दोषबुद्धि, पर फिर भी उनमें स्त्री का भाव तो रहा, सो उद्धवजी उनसे अधिक ज्ञानी कहे जाएं, पर उन्हें भी घर छोड़ना कठिन पड़ा, सो जड़भरत व शुकजी की समझ इससे भी अधिक कही जाए; क्योंकि उन्हें स्त्री-पुरूष भाव ही नहीं।
प्र. 1-36

✷ पूरे कल्प (युग) तक भगवान के सम्मुख बैठे रहेंगे, परन्तु निषेध किए बिना विषय तो टलेंगे नहीं और यदि साधु मिल जाएं तो वे टालें। निर्विकल्प समाधि होती हो तब भी विषय तो नहीं टलते, परंतु ज्ञान की समाधि से टलते हैं।
प्र. 1-37

✷ अंतःकरण रूप माया का क्लेश खूब भारी है। क्योंकि भरतजी का वैराग्य कैसा ? और कितना राज्य छोड़ा ? तब भी उन्हें विघ्न हुआ। सौभरी ऋषि और पराशर ऋषि आदि भी कैसे ? लेकिन उन्हें भी धक्के लगे। इसलिए साधु ज्ञान देकर (नव) जन्म देते हैं और निषेध करते हैं तब वह क्लेश टलता है,

परंतु इसके बिना टलता नहीं है। सारी उम्र भगवान के साथ कोई रहे, तब भी ज्ञान के बिना कसर टलती नहीं है।

प्र. 1-38

✷ वचनामृत पढ़वाते हुए बात करी कि शायद भगवान की मूर्ति में जुड़ भी जाए, तब भी कई गुत्थियां कैसे सुलझें? सो, सबसे अधिक 'ज्ञान' है; फिर नाड़ियाँ तने या ना तने। सांख्य और योग से भी अधिक भगवान को सर्वोपरि समझना—वह श्रेष्ठ है।

प्र. 1-39

✷ प्रेमी का लगाव हौद के पानी जैसा होता है और ज्ञानी का लगाव पाताल के पानी जैसा होता है। प्रेमी का तो भगवान और साधु को रखना पड़ता है और ज्ञानी का रखना नहीं पड़ता है।

प्र. 1-41

✷ देह में रोगादिक दुःख आ पड़े, वह तो उसे भेजने वाले टालें तभी टलते हैं, लेकिन अन्य किसी से टलते नहीं; जैसे राजा का भेजा हुआ मुहस्सिल, राजा की चिट्ठी आए तो ही लौटेगा, लेकिन गांव के किसी के कहने से वह नहीं उठेगा—यूं समझना।

प्र. 1-45

✷ भगवान का धाम गुणातीत है और जीव को गुणातीत करना है। हमने जो यह ज्ञान सुना है, वह और कहीं बनेगा नहीं व हम कहीं रह भी पायेंगे नहीं व ये जो प्रगट मिले हैं वे हमें छोड़ें ऐसे भी नहीं हैं। ऐसा उन्हें आता है और अब का ज्ञान सुन कर जो जाता है उसे श्वेतद्वीप और वहां तक का फिर कोई मुकाबला कर नहीं पाता और यह ज्ञान तो फिरंगी की तोप जैसा है और उसके मुकाबले दूसरों का ज्ञान तो पटाखों जैसा है और कहा है कि—

भक्त के अवगुण को नाथ गिनते नहीं रे, भगवान तो शरणागत का भला करें ऐसे हैं तो। यूं महिमा की बहुत बातें कहीं।

प्र. 1-47

✷ सब काम छोड़ कर फ़ारिग होकर यहां कथा सुनते हैं वह ऐसा समझना कि करोड़ काम कर रहे हैं। वह क्या ? तो, हम यमपुरी, चौरासी योनि और गर्भवास के दुःख पर सेरे लगा रहे हैं। अतः यूं नहीं समझना कि खाली बैठे हैं।

प्र. 1-50

✷ लगातार मंदिर का काम किया करें, तो भी ज्ञान वृद्धि को पायेगा नहीं। ज्ञान तो साधु समागम से ही आता है।

प्र. 1-53

- शास्त्र में बहुत भारी-भारी प्रायश्चित् बताए हैं, वे सब इस साधु के समागम और दर्शन से निवृत्त हो जाते हैं, ऐसा यह दर्शन है।
प्र. 1-54

- भगवान की उपासना का बल जिसे हो, उसे महाप्रलय जैसा दुःख आ पड़े तो भी यूं समझे कि देह तो छूट जायेगी, पर हम भगवान के धाम में जाएंगे, यूं समझकर सुखी रहे।
प्र. 1-56

- ऐसे साधु जूते मारेंगे, तब भी अक्षरधाम में ले जाएंगे और दूसरे रेशमी गद्दों में भी सुलाएं तब भी नर्क में डालेंगे, यह समझ रखना।
प्र. 1-57

- हमारे दोष तो महाराज ने टाल दिए हैं और उन दोषों का दर्शन होता है, वह तो हमारे श्रेय के लिए है। अगर यह ना हो तो जीवात्मा उन्मत्त हो जाए और अब तो हमें भगवान को वश में करना है और भगवान जैसा सामर्थ्य प्राप्त करना है इसके लिए लगे हुए हैं।
प्र. 1-58

- धर्मशाला की कारसेवा कराते हैं, उस बारे—आज्ञा करके ऐसी धर्मशालाएं तो कई-कितनी बनवाएं, लेकिन उसमें बंधना नहीं है और बंधना तो (सिर्फ) भगवान और साधु—इन दो में बंधना चाहिए।
प्र. 1-64

- करोड़ों कल्प (युग) के बाद यह बात हाथ आई है। किन्तु यह सत्संग राजा को, बिरादरी को और घर वालों को जँचता नहीं है और इन्द्रियाँ एवं अंतःकरण को भी जँचता नहीं है। केवल जीवात्मा को ही जँचता है और माया तो बेचारी परेशान है कि यह तो मेरे हाथ से गया।
प्र. 1-69

- (व्रत, जप, तप आदि) साधन करके मर जाएं तब भी वासना टलती नहीं है; वह तो बड़े संत के अनुग्रह से ही टलती है।
प्र. 1-70

- हमारा तो कोई दर्शन करेगा उसका भी कल्याण होगा; लेकिन बहुत महिमा कहें तो कोई नियम पालेगा नहीं और यह तो मुक्तों ने देह धारण किया है। वासना जैसी जो दिखाई देती है, वह तो देह के भाव हैं, वर्ना तो देह रहे नहीं।
प्र. 1-71

- महाराज की कही हुई बात करी कि महाराज कहते थे कि करोड़ नावों से एक लड़ाकू जहाज भरा जाता है, ऐसे सौ करोड़ जहाज भर जायें, इतने जीवों का कल्याण करना है। पर, इतने जीवों का कल्याण कैसे होगा ? फिर यूं सोचा कि हमारा जो दर्शन करे उसका कल्याण हो, फिर सोचा कि हमारा दर्शन भी तो

कितने जीवों को हो पाएगा ? सो, हमारे साधु का जो दर्शन करे उसका भी कल्याण ! तत्पश्चात् उसमें भी विचार आया कि साधु का दर्शन भी भला कितने जीवों को होगा? सो, हमारे सत्संगी का दर्शन करे उसका भी कल्याण और हमारे सत्संगी को खाना खिलाए या उसके यहां खाना खाए व सत्संगी को पानी पिलाए या उसके यहां का पानी पीए, उन सभी का कल्याण करना है।

प्र. 1-72

✷ गुरु के अंग के बारे बुलवा कर उसमें प्रश्न पूछा कि इस अंग में तो सारी बात गुरु ही करता है यूं कहा है लेकिन किसी पुरुष प्रयत्न बारे तो कहा नहीं है। सो क्या समझना? तब उसका उत्तर किया कि–
सब कुछ गुरु ही करते हैं, तभी हम यहां आ भी पाए हैं और मानो अब ही सभी दोष टल जाएं, तो फिर चैन से सोये रहेंगे। फिर यदि कोई भी टोकेगा तो सह नहीं पायेंगे और ज्ञान के बिना तो उन्मत्त हो जायेंगे; सो ज्ञान सबसे अधिक श्रेष्ठ है।

प्र. 1-73

✷ ये तो अनंत भगवानों के भगवान हैं, इतना ही कहते हैं। इससे अधिक क्या कहा जाये? वे हमारे घर में आकर बैठे हैं, वह तो झोंपड़े में हाथी बांधने जैसा है।

प्र. 1-75

✷ हमें तो भगवान की जरुरत नहीं है, किन्तु भगवान आकर हमें जबरदस्ती चिपके हैं। महाराज कहते थे–जब भूत भी पिण्ड नहीं छोड़ता है, तो हम कैसे छोड़ेंगे ?

प्र. 1-76

✷ भगवान जीव के गुनाह को देखते नहीं हैं। जीव यदि भगवान की स्तुति करके प्रार्थना करे कि 'हे भगवन् ! मैं गुनहगार हूँ'–तो भगवान उसके गुनाह माफ कर देते हैं।

प्र. 1-77

✷ हमें तो एक जन्म-मरण का रोग टालना आता है, और (कुछ) आता नहीं है।

प्र. 1-78

✷ वचनामृत की सारी किताबें भी सत्संग में सहाय नहीं करेंगी, वे तो पुस्तक छोड़-छोड़ कर चले जाते हैं। सो, सच्ची सहायता तो ऐसे साधु करेंगे।

प्र. 1-82

✷ लोया के सातवें वचनामृत में कहा है कि इंद्रियाँ-अंतःकरण और अनुभव ये तीनों पहुँचे तभी पूरा ज्ञानी कहा जाए। उस पर बोले कि हमारा तो सभी पहुंचा है और दिखाई नहीं पड़ता, वह तो उनकी इच्छा है।

प्र. 1-83

✷ नंदराजा ने सारी पृथ्वी का धन इकट्ठा किया और फिर आख़िर में उसी के कारण उनकी मौत हुई और चित्रकेतु राजा ने करोड़ स्त्रियाँ इकट्ठी करी और आख़िर उनमें से दुःख आया तब छोड़ी—वह रास्ता ही ऐसा है।

प्र. 1-85

✷ चिंतामणि कुछ सुंदर नहीं होती; वैसे ही भगवान और साधु भी मनुष्य जैसे ही होते हैं, लेकिन वे दिव्य हैं और कल्याणकारी हैं और मनुष्य की देह चिंतामणि है।

प्र. 1-87

✷ 'मार-मार' करता कोई हम पर वार करने आ रहा हो, तब भी समझना कि मेरे स्वामी का किया ही सब कुछ होता है, परंतु उनकी इच्छा के बिना सूखा पत्ता भी किसी से हिल नहीं सकता।

प्र. 1-88

✷ सारा ब्रह्मांड 'स्वामिनारायण' का भजन करेगा तब सत्संग हुआ समझना और सत्संग इतना बढ़ेगा व एक-एक साधु के पीछे लाख-लाख मनुष्य घूमेंगे—इतना सत्संग बढ़ने वाला है।

प्र. 1-90

✷ जीव के चिपके रहने के दो ठिकाने हैं, भगवान में चिपका रहे या माया में; किन्तु बिना आधार तो कैसे रहा जाए ?

प्र. 1-91

✷ गफलत टालने का उपाय; एक तो लगन दृढ़ रखी हो—होशियार रहे तो टले और दूसरा उपाय; कोई शिक्षा करे—दंड दे तो टले।

प्र. 1-93

✷ फिलहाल अक्षरधाम के जैसा सुख यहां वर्तता है, उसमें भी कई दुःखी हैं ! वह, देह का दुःख कम और मन का दुःख ज्यादा है।

प्र. 1-99

✷ प्रकृति पुरुष तक तीन प्रकार के ताप हैं और तीन गुण (सत्त्व, रज, तम) हैं और उससे पर गुणातीत सुख है।

प्र. 1-100

✷ भगवान और भगवान के साधु—इन दो के सम्मुख ही देखते रहना। ये दो ही देखने लायक हैं; इनके अतिरिक्त किसी में माल नहीं है।

प्र. 1-101

✷ बड़े संत के प्रति मनुष्यभाव नहीं रहा है यह कैसे जाना जा सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि— इनकी कोई भी क्रिया में हमें दोष नज़र नहीं आए; यह ही दिव्यभाव है।

प्र. 1-102

✷ भगवान की स्तुति करनी लेकिन अपने आपको पतित और अधम नहीं मानना। क्योंकि ऐसा मानेंगे तो जीव में बल नहीं रहेगा और जीव ग्लानि को पाएगा और हमें तो भगवान मिले हैं, सो अपने आपको पतित क्यों माने ? हमें तो कृतार्थ मानना चाहिए।

प्र. 1-103

✷ 'मोहा मोह मिले निज प्रीतम, कौन पतियार करे पतियांसे'—उसमें क्या कहा कि—काग़ज़ के लिखने वाले ही मिल गए हैं, फिर कागज़ का क्या काम? इस प्रकार हमें प्रगट संत मिले हैं, फिर अब भला क्या बाकी रहा?

प्र. 1-104

✷ आज तो सभी को कसनी में लेना है और सभी को एकांतिक करना है व वासना रही होगी तो सूर्य के लोक से होते हुए जला कर ले जाएंगे।

प्र. 1-105

✷ राजा के कुंवर को भंगी मार नहीं सकता; इसी प्रकार काल, कर्म, माया आदि किसी की हिम्मत नहीं कि भगवान के भक्त को कष्ट दे।

प्र. 1-106

✷ अपने मन से कोई दो व्यक्तियों के बराबर अकेला काम कर लेता हो, उसकी अपेक्षा बड़े संत की आज्ञा से चाहे बैठा रहे या वे जो कहें उतना ही करे—वही श्रेष्ठ है।

प्र. 1-109

✷ बड़े (संत) को क्या करने की लगन है वह कैसे समझा जाये? यह प्रश्न पूछा—तब वड़ताल का सोलहवां वचनामृत पढ़वा कर बोले कि—इसमें जैसा कहा है वैसे करवाना है। वह क्या तो 'भगवान का भजन और भगवान के भक्तों का संग'—ये दो ही रहस्य और अभिप्राय हैं। यह करने जो लग पड़े, उस पर प्रसन्न होने में कहां देर है? सो जिसे प्रसन्न करने हों, उसे इस प्रकार लग पड़ना चाहिए।

प्र. 1-111

✷ भगवान और बड़े साधु के आसरे से तो बादल जैसे दुःख आने वाले हों, वे भी टल जाएं और साधन कर-करके कूट कूट कर चाहे मर भी जाएं, तो भी नहीं टलते।

प्र. 1-114

✷ भीतर में जो ज्ञान भरा है, वह तो अभी तक बाहर निकाला ही नहीं है, क्योंकि सुनने वाले पात्र नहीं मिले हैं और यह ज्ञान तो ब्रह्माजी की आयु पर्यन्त करें, तब भी कम नहीं हो; लेकिन वह ज्ञान कहने के लिए फारिग़ नहीं होते हैं।

प्र. 1-115

✷ बड़े संत किसी को तो ज्यादा सुख देते हैं और किसी को थोड़ा सुख देते हैं उसका कैसे समझना?
इस प्रश्न का उत्तर किया कि—बड़े तो समुद्र जैसे हैं। समुद्र में तो पानी की कमी नहीं है, वैसे ही बड़े संत तो किसी को सुख कम देते नहीं हैं। लेकिन पात्र के कारण ऐसा लगता है और ऊपर से तो बड़े व्यक्ति का जैसे रखना पड़े, वैसा गरीब का नहीं रखा जाये। यह तो व्यवहार कहा जाये कि पर्वतभाई जैसे पीछे बैठते हैं और समाज की प्रतिष्ठित व्यक्ति आगे बैठती है।

प्र. 1-117

✷ करोड़ों जन्मों के बाद जो कसर टलने वाली हो वह आज ही टल जाए और जीव ब्रह्मरूप हो जाए, यदि सच्चे संत मिल जाएं और इनकी आज्ञा में रहें तो।

प्र. 1-119

✷ करोड़ कल्प के बाद भी भगवान के धाम की प्राप्ति संभव नहीं है, किन्तु ऐसे संत को हाथ जोड़ने मात्र से प्राप्त हो जाता है।

प्र. 1-121

✷ दूसरे दोषों को तो महाराज गिनते नहीं हैं, लेकिन चार के द्रोहों को गिनते हैं। एक भगवान, दूसरा आचार्य, तीसरे साधु और चौथे सत्संगी—इन चारों का द्रोह नहीं करना चाहिए।

प्र. 1-122

✷ इस लोक में सयाना तो कोई भगवान को भजता नहीं है, जो पागल हो वह भजता है।

प्र. 1-125

✷ बाजरे की रोटी खाकर भगवान का भजन करना है और कुछ करना नहीं है। रोटी तो भगवान को देनी है—साधु को देनी है, सो देंगे, देंगे और देंगे।

प्र. 1-126

✷ जिसकी भगवान और संत से प्रीति रहेगी उसे सब प्यार करेंगे। भगवान और संत से जो प्रतिकूल होंगे उससे सब प्रतिकूल होंगे। यह बात समझ रखना, क्योंकि इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

प्र. 1-128

✷ दुःख कोई मानना नहीं और जिसकी जरूरत है, वह तो हमें मिला है। अधिक रुपये दें, तो प्रभु को भज नहीं पायेंगे। इसलिए देते नहीं हैं।

प्र. 1-129

✷ शरीर सूखा दो, अन्न खाना छोड़ दो, वन में चले जाओ या घर छोड़ दो इसकी अपेक्षा ये साधु की बात सुननी, वह अधिक है और ये तो पुरुषोत्तम के वचन हैं

और गुणातीत बातें हैं। इन बातों से तो अक्षरधाम दिखाई पड़ता है। अक्षरधाम और मुक्तों को लेकर भगवान ऐसे के ऐसे ही आए हैं, उसमें फर्क नहीं समझना चाहिए पर महिमा समझ में नहीं आता इसलिए जीव दुर्बल रहता है।

प्र. 1-132

✷ शायद प्रसन्न होकर सिर पर दो हाथ यदि रख भी दें, तब भी ज्ञान कैसे होगा ? वह तो बातों से होगा और प्रसन्न होकर तो बुद्धि दें, सो बातें समझ आएंगी।

प्र. 1-136

✷ ये बातें तो जादू हैं, जो सुने वह पागल हो जाए। पागल क्या ? तो उसे जगत मिथ्या हो जाए। फिर उसे सयाना कौन कहेगा ?

प्र. 1-137

✷ पहले तो मुमुक्षु भगवान को खोजते थे और आज तो भगवान मुमुक्षु को खोजते हैं।

प्र. 1-143

✷ ये कारखाने यदि एक वर्ष के करें, तो दो वर्ष के खड़े हो जाएं और दो वर्ष के करें, तो चार वर्ष के खड़े हो जाएं ऐसा है और सब लग पड़ें तो जूनागढ़ से वड़ताल तक की सड़क बांध दें, फिर छांव में चल पड़ें तो ज़रा भी धूप ना लगे, लेकिन फिर जो बातें करनी हैं और समझना है वह रह जायेगा और भगवान के बिना तो आत्मज्ञान, वैराग्य और धर्म ये सभी अभद्र हैं, कोई कल्याणकारी नहीं है।

प्र. 1-147

✷ भीतर में ठंडक रहे और उद्वेग न हो—उसके दो उपाय हैं। एक तो भगवान का भजन करना और दूसरा भगवान को ही सर्व कर्ता समझ कर सुख मिले तो सुख भोगना और दुःख मिले तो दुःख भोग लेना। कहा है कि—दास के दुश्मन हरि कभी हो नहीं सकते, वे जैसा भी करेंगे सुख ही होगा।

प्र. 1-149

✷ बड़े संत के प्रति सद्भाव—वही निर्वासनिकभाव का हेतु है और बड़े संत के प्रति असद्भाव वही वासना का हेतु है। भगवान पहचाने गये, साधु पहचाने गये—सो सब समझ लिया, अब कोई मंसूबे करना नहीं।

प्र. 1-152

✷ मोक्ष तो भगवान और साधु इन दो से ही है। दूसरे साधन का फल तो धर्म, अर्थ और काम है।

प्र. 1-153

✷ 'स्वामिनारायण' नाम के मंत्र जैसा दूसरा कोई भी मंत्र आज बलवान नहीं है। इस मंत्र से काले नाग का ज़हर भी नहीं चढ़ता। इस मंत्र से विषय टल

जाते हैं, जीव ब्रह्मरूप होता है और काल, कर्म एवं माया के बंधन छूट जाते हैं। ऐसा बहुत बलवान यह मंत्र है। सो, निरंतर भजन करना।

प्र. 1-154

✷ कामक्रोधादिक दोष तो शरीर पर उभरने वाले मुहांसे और दाद जैसे हैं। वे तो देह के भाव हैं और टल जाएंगे। बड़े संत यदि कृपा दृष्टि करें तो इसी क्षण टल जाएं, किन्तु बड़े संत में दोष देखना यह तो क्षय रोग जैसा है।

प्र. 1-165

✷ एक तो– भगवान की आज्ञा का पालन करना,
दूसरा– संत का स्वरूप समझना,
और
तीसरा– भगवान का स्वरूप समझना।
इन तीन बातों से भगवान प्रसन्न, प्रसन्न और प्रसन्न हैं और उसे धन्य है, धन्य है, धन्य है। ये तीन बातें रखना।

प्र. 1-166

✷ आसरा का रूप बताया कि–हमारे मंदिर में कल ही कोई आया हुआ हो और वह बीमार पड़ जाए और बीस वर्ष तक बीमार रहे; तो भी उसकी सेवा हम करें। गृहस्थ की पत्नी व बच्चों को उसका आसरा है, तो वह देश-विदेश जाकर भी उनकी खबर रखता है, वैसे भगवान उनके आश्रित की खबर रखते हैं।

प्र. 1-168

✷ एक तो यज्ञ करके सारी पृथ्वी में घोड़ा घुमाना–वह बहुत कठिन है; क्योंकि यदि कोई घोड़े को बांध दे, तो यज्ञ अधूरा रह जाता है। दूसरे प्रकार के यज्ञ में घोड़े को बेड़े में ही घुमा लेते हैं। यह आसान है। इसी प्रकार इन्द्रियां और अंतःकरण को वश में करना सारी पृथ्वी में घोड़ा घुमाने जैसा कठिन है, किन्तु अपने आपको ब्रह्मरूप मानना यह बेड़े में घोड़ा घुमाने जैसा आसान है। इसी प्रकार साधु के चौंसठ लक्षण सीखना, पृथ्वी में घोड़ा घुमाने जैसा कठिन है और चौंसठ लक्षण युक्त साधु के साथ जुड़ जाना वह बेड़े में घोड़ा घुमाने जैसा आसान है।

प्र. 1-172

✷ तप कर-करके खाक हो जाए, तो भी यदि भगवान का आसरा न हो, तो भगवान लेने नहीं आएंगे और झूले में सोता रहे व दूध-शक्कर और चावल खाए एवं सेवा करने वाले व कमा कर देने वाले दूसरे हों, तो भी उसे अंतकाल में विमान में बिठाकर भगवान ले जाते हैं, यदि भगवान का दृढ़ आसरा हो तो। सो, मोक्ष का कारण आसरा है।

प्र. 1-173

✷ जब खाली हों—फारिग़ हों तब भगवान की मूर्ति लेकर बैठना। वो मूर्ति क्या ? भगवान की कथा, कीर्तन, वार्ता और ध्यान—वो भगवान की मूर्ति है। जहां देह है वहां लोभ, काम, क्रोध, स्वाद, स्नेह, मान, निद्रा आदि हैं ही। इनको देह के साथ ही रखना। अफीम के व्यसनी को लगता है कि वो व्यसन सुखद है, किन्तु वास्तव में देह के लिए दुःखदायी है यह समझ लेना।

प्र. 1-174

✷ किसी व्यक्ति का किसी ने थोड़ा भी रखा हो, तो भी वह नहीं भूलता; तो भगवान के लिए हमने कुछ किया हो या करें तो वे कैसे भूलेंगे ? ये भगवान तो कुछ भूलें ऐसे नहीं हैं। भगवान की दया तो अपार है और सभी जगह पर दया वहीं से ही आयी है।

प्र. 1-176

✷ भगवान मिल गए, साधु मिल गए, अब (किसी बात से) दिल में दुःख नहीं आने देना और (यदि) प्रारब्ध का आए तो वह भोग लेना।

प्र. 1-177

✷ माता देवहुति ने महाराज को कहा कि मेरी स्त्री की देह, सो मुझे ज्यादा तो समझ नहीं आता, इसलिए थोड़े में ही बता दो। फिर महाराज ने साधु के चौंसठ लक्षण बताकर कहा कि ऐसे साधु में जिसने आत्मबुद्धि करी उसका सब कुछ सम्पूर्ण हो गया और महाराज ने कहा कि ऐसे भक्त के दर्शन करने की तो हमें भी इच्छा रहती है; यूं बहुत महिमा कही।

प्र. 1-184

✷ जिसे ज्ञान न हो उसे तो यूं रहता है कि हम क्या पाएंगे और कहां जाएंगे ? और जिसे ज्ञान हो उसे तो अहो ! अहो ! हुआ करे कि यह प्राप्ति हो गई है; अब कुछ करना बाकी रहा नहीं है।

प्र. 1-185

✷ सौ जन्म का शुद्ध ब्राह्मण हो उससे भी अधिक भगवान का भक्त चाहे अछूत ही क्यों ना हो? वह श्रेष्ठ है—यूं भगवान के भक्त की महिमा समझना ऐसा प्रहलाद्जी का कहना है।

प्र. 1-186

✷ भगवान जब पृथ्वी पर आते हैं तब राजसी, तामसिक, सात्विक और अधम इन सबका उद्धार कर देते हैं। कोई फर्क-भेदभाव नहीं रखते।

प्र. 1-187

✷ पुरुषोत्तम की उपासना के कारण जीव अक्षर स्वरूप होता है और यदि कोई बड़े संत मिल जायें, तो वह जीव बहुत ही बड़प्पन को पाता है और जूं ब्याती

है तब लीख पैदा होती है और हथिनी ब्याती है तब उसका बच्चा बैल जितना पैदा होता है। उस पर वचनामृत पढ़वाया कि भगवान को जैसा मानें वैसा खुद होता है।

प्र. 1-189

✷ कोटि कल्प के पाश लगे हुए हैं, सो अभी भगवान में जुड़ने जाते हैं, पर माया में खींचे जाते हैं और जब ज्ञान होगा तब माया में जुड़ने भी जाएंगे, तो भगवान में जुड़ जाएंगे। फिलहाल तो इंद्रियों-अंतःकरण के भाव को छोड़ कर साधु में जुड़ जाना; फिर साधु भगवान में जोड़ देंगे और अपने बल से छूटने जाएंगे तो अधिक शिकंजे में आयेंगे।

प्र. 1-190

✷ हमारा कल्याण तो प्रत्यक्ष भगवान के आसरे से है और शास्त्र की मर्यादा में वर्तना, वह तो दूसरों के कल्याण के लिये है; क्योंकि हमारा गुण आए तो उसका भी कल्याण होगा।

प्र. 1-194

✷ हम समझते हैं कि हमें भगवान से प्रीति है, किन्तु भगवान और साधु को हम से कई गुणा अधिक प्रीति है।

प्र. 1-197

✷ भजन करना सबसे अधिक है और स्मृति रखनी इससे अधिक है। ध्यान करना इससे भी अधिक है और भगवान को अपनी आत्मा में धारण करना वह तो इससे भी अधिक है।

प्र. 1-201

✷ सच्चे भगवदी में (सत्त्व, रज और तम के) गुण व्याप्त नहीं होता है। वह तो दरवाजे पर खड़े-खड़े यानि–सतर्क होकर–सावधान रह कर देखता रहता है।

प्र. 1-206

✷ मेरी देह पच्चीस वर्ष ज्यादा बिना आयु की रही है। वह किसलिए ? मुमुक्षुओं के भले के लिए रही है और महाराज का स्वरूप समझाने के लिए हमें रखा है।

प्र. 1-209

✷ आज का आया होगा, उसे अक्षरधाम का सुख आता होगा और निष्ठा के बिना तो महाराज से मिला हुआ होगा या मुक्तानंदस्वामी को मिला हुआ होगा तब भी उसे अक्षर का सुख नहीं आता होगा। यूं समझ का फर्क है।

प्र. 1-210

✷ हमें ज्ञान तो आता नहीं है और वैराग्य तो है ही नहीं; सो 'मैं भगवान का और वे मेरे' यूं मानना और लगाव तो पंद्रह आने संसार में है और एक आना

हमारे साथ है। कल्याण तो उनकी शरण (में) ले लिया है, वे समर्थ हैं सो करेंगे और वह उनका बड़प्पन है।

प्र. 1-211

✷ राजा को पानी नहीं पिलाया फिर भी उसने (राजा ने) संकल्प किया था, सो गाँव बख़्शिश में दिया; यूं जीव अपने स्वभाव छोड़ता नहीं है, वैसे भगवान भी मोक्ष करने का अपना स्वभाव छोड़ते नहीं हैं।

प्र. 1-213

✷ दिव्यभाव और मनुष्यभाव इन दोनों को एक समझे वह माया से तर गया है और वही माया है यह समझ रखना। यूं ना समझे तो प्रथम जब प्रताप दिखाए, तब खुश हो जाये। पर जब स्वरूप रोते नज़र आये तब उलझन में पड़ जाये। दिव्यभाव व मनुष्यभाव एक समझे उसे भला क्या करना बाकी है ? कुछ भी बाकी नहीं।

प्र. 1-215

✷ गृहस्थ को अपनी माँ-बहन खुले बदन नजर आ जायें, तो वह मुँह फेर लेता है, यूं भगवान भी अपने आश्रितों के दोष देखते नहीं हैं।

प्र. 1-217

✷ यह साधु तो भगवान की हुजूर में रहने वाला है और भगवान से पल भर भी दूर रहे ऐसा नहीं है। यदि दूर रहता है तो जीवों के कल्याण के लिए रहता है। (यह साधु द्वारा) इस समय जो बात होती है, ऐसी बात जन्मान्तर में भी कोई नहीं कर पाएगा और करनी आएगी भी नहीं। सारा जन्म अभ्यास करने पर भी ऐसी बात करना सीखा नहीं जायेगा।

प्र. 1-220

✷ हम भगवान के हैं, लेकिन माया के नहीं हैं—यूँ मानना।

प्र. 1-231

✷ भगवान को निर्दोष समझने से मोक्ष हो रहा है और यदि दोष टालने का अभ्यास करेंगे, तो टल जाएंगे, वर्ना तो देह रहे तब तक दुःख रहे और दोष दिखाई पड़ते हैं वे सभी तत्त्व के दोष हैं।

प्र. 1-233

✷ अष्टांग योग या तो रोग के बिना अंतर का मैल जाएगा नहीं। उस पर एक भक्त का दृष्टांत दिया कि उसे रोग आ जाने के बाद ही वह ठीक हुआ।

प्र. 1-235

✷ जागा भक्त ने प्रश्न पूछा कि सूली पर चढ़ाया हो तो भी कैसे समझे तो संकल्प ना उठे कि भगवान छुड़ायें तो ठीक—ऐसी कौन-सी समझ है ?

तब उत्तर किया कि इन सबके कर्ता भगवान को जाने कि भगवान के सिवा किसी का किया कुछ नहीं हो सकता—यूं समझे उसे संकल्प नहीं उठेगा और धैर्य रहेगा और जो यूं न समझे वह तो थोड़े में बेबस जैसा हो जाए और धीरज रहेगी नहीं।

प्र. 1-236

✷ सौ जन्म के बाद भी यह बात समझ नहीं पाओगे, सो आज समझ लेना। दो अच्छे साधु और तीन अच्छे हरिभक्तों के साथ जी जोड़ देना। फलस्वरूप आप सत्संग से कभी हटोगे नहीं। काम-लोभादि थोड़े बहुत भीतर में रह भी गए, तो चिंता नहीं है।
वचनामृत में महाराज ने कहा है—'काम, लोभ का संकल्प ना हो, किन्तु भगवान के भक्त से जी जोड़ा नहीं हो तो, इससे क्या फायदा ? सही संबंध के अभाव से असुर होंगे।'
अतः भगवान के अच्छे भक्त से जुड़ जाना ही मुख्य समझने की बात है। अन्य और बातें तो इसलिए करनी पड़ती हैं कि यह प्रथा चलानी है और नियम पालन करवाने हैं।

प्र. 1-238

✷ प्रतिदिन लाख रुपये (चंदा) लाता हो किन्तु सत्संग की टीकाचर्चा करता हो, तो वह हमें नहीं जँचता है और यदि कोई सोता ही रहे और खाए, पर भगवान के भक्त की महिमा गाता हो तो उसकी सेवा मैं करवाऊं; ऐसा मेरा स्वभाव है।

प्र. 1-239

✷ भगवान मिले हैं, साधु मिले हैं; सो, कल्याण तो होगा, लेकिन ज्ञान के बिना भीतर में सुख नहीं होगा।

प्र. 1-242

✷ जिसका किया होता है उन्हें तो समझते हैं कि कुछ जानते नहीं हैं और बीच में दूसरे कई मंसूबे करते हैं।

प्र. 1-251

✷ शास्त्र में भगवान को समदर्शी कहा है, किन्तु यह सच नहीं है। भगवान तो भक्त के हैं, अभक्त के नहीं हैं। अतः भगवान समदर्शी नहीं हैं।

प्र. 1-253

✷ भगवान अपने भक्तों में पात्रता के अनुसार निवास करते हैं। जितना भक्त महान होगा इतने वे उसमें विशेष रूप से रहते हैं।

प्र. 1-254

✷ मध्य का नौंवा वचनामृत पढ़वा कर बोले कि महाराज को पुरुषोत्तम जानता हो और कठिन माहौल के कारण वह सत्संग में से निकल जाए, तो भी अक्षरधाम

को पाएगा और जो यूं नहीं समझता हो, वह तो चाहे सत्संग में हो तो भी अन्य धाम को पाएगा।

प्र. 1-263

✷ देह को छोड़कर जिन्हें पाना था वे ही प्रगट बातें कर रहे हैं; लेकिन यह सभी की समझ में आयेगा नहीं और त्याग-वैराग्य की जो बातें करते हैं, वह तो जीवों को अनुशासन में रखने के लिए करते हैं, लेकिन समझना तो इतना ही है।

प्र. 1-265

✷ हम में से आज किसी को अकेला निकाल दिया हो, तो भी वह जगत का तो प्रभु है। अब के संबंध की ऐसी महिमा है।

प्र. 1-268

✷ श्री कृष्ण को बाण लगे और प्रहलाद्जी को नहीं लगे, वह भी भगवान का करा समझना।

प्र. 1-269

✷ 'जूनागढ़ के जमानती महाराज दो बार हुए हैं, एक बार वड़ताल में और दूसरी बार गढडा में'–यूं कहने पर एक संत ने पूछा कि जमानती होना क्या समझना ? तब बोले कि माया का बंधन होने नहीं दे। फिर दोबारा उस संत ने पूछा कि–वे जमानती कब तक बने रहेंगे? तब बोले कि हम हैं तब तक तो (जमानत) जरूर रहेगी और अभी तो महाराज का ही ज्ञान है और महाराज ने तो कहा है कि जूनागढ़ जाएगा उसकी करोड़ जन्म की कसर वे टाल देंगे। गढडा से हम यहां आए, तब ये आशीर्वाद देकर भेजा था।

प्र. 1-273

✷ झीणाभाई ने महाराज के पास जूनागढ़ में मंदिर करवाने का माँगा वह महाराज ने ही प्रेरणा करी होगी। यूं यहां मंदिर बनाया और उसमें साधु भी ऐसा ही रखा और इस मंदिर में अभी तक तो चंदे–भेंट वग़ैरह की सूची तो बनाई ही नहीं गई है।

प्र. 1-275

✷ परेशानी आए तब क्या करना ? इस प्रश्न का उत्तर करा कि– 'स्वामिनारायण-स्वामिनारायण' भजन करना। इससे परेशानी टल जाएगी।

प्र. 1-274

✷ यदि कोई भगवान का भजन करे तो उसकी सेवा मुझे करानी, उसके कपड़े धुलवा कर व उसे बैठे-बैठे खाने देना।

प्र. 1-278

✷ हमने कुछ अच्छा काम किया हो और हमें उस का मान आता हो, इसलिए बड़े संत यदि कहें कि यह काम बिगड़ गया, तब भी खुश रहना चाहिए। क्योंकि हमें तो आगे-पीछे की सूझ नहीं और बड़े संत तो दूरदर्शी होते हैं– जानी जान हैं। आगे जो होने वाला है उसे देखते हैं।

प्र. 1-280

✷ करोड़ों काम ठुकराएंगे तब भगवान की कथा होगी और करोड़ों काम ठुकराएंगे तब भगवान की बातें होंगी और ध्यान तो इसके बाद होता है।

प्र. 1-283

✷ भगवान के भक्त को तीन में से एक प्रकार का 'ध्यान' तो रहता है। एक– निश्चियरूप ध्यान, दूसरा–'मुझे साधु के पास जाना है' यह अनुसंधान रूप ध्यान और तीसरा–'मैं भगवान का भक्त हूँ–' यह। वर्ना मूर्ति में तेलधारा वृत्ति रखनी यह तो स्वरूपानंदस्वामी जैसों की बात है।

प्र. 1-284

✷ एक हरिभक्त ने पूछा कि–ऐसा जोग न रहे और कसर रह जाए, फिर कैसे होगा? उसका उत्तर किया कि जिसने ऐसा जोग दिया है, वे ही कसर टलवाएंगे।

प्र. 1-288

✷ भगवान के संग रहे, फिर भी खोट रह गई–वह क्यों ? तो–इस साधु का समागम नहीं किया।

प्र. 1-290

✷ भगवान जैसे ये साधु हैं, लेकिन उनके पास रहा नहीं जाता, वह बड़ी खोट है।

प्र. 1-291

✷ बड़े (संत) परोक्ष हो जाएं उसके बाद भी वे अपने आश्रित की आज की तरह खबर रखते हैं या नहीं रखते ? उसका उत्तर किया कि–
वे भला कहां परोक्ष होने वाले हैं ? हाँ, आज की भांति दिखाई नहीं देंगे; पर खबर तो ऐसी ही रखेंगे। वे यदि खबर नहीं रखें, तो ब्रह्मांड की स्थिति कैसे रहे ?

प्र. 1-294

✷ कोटि तप, कोटि जप, कोटि व्रत, कोटि दान और कोटि यज्ञ करके जिस भगवान और साधु को पाना था वे आज हमें मिले हैं।

प्र. 1-296

✷ भगवान की मूर्ति को चिंतामणि जो कहा है, वह बात समझी गई है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर दिया कि चिंतामणि तो है ही, परंतु बालक के हाथ में है।

प्र. 1-299

- सत्पुरुष के संबंध से जीव को संस्कार पड़ते हैं। एक या दो जन्म में भगवान के धाम को पा लें; ऐसा प्रगट का प्रताप है। उसकी विक्ति है कि—उनका दर्शन हो, उनका गुण लें, उनका पक्ष लें, उन्हें नमस्कार करें और 'ये साधु बहुत अच्छे हैं' यूं कहें तथा उन्हें अन्न-जल दें—वग़ैरह द्वारा संबंध हो; इससे भी अधिक जिस पेड़ के नीचे वे बैठें और जिस पेड़ का वे फल खाएं, जिस पशु का वे दूध-दही खाएं—यूं अनंत प्रकार से जीव को संबंध होता है। वे सभी भगवान के धाम को पाते हैं; ऐसा प्रगट का संबंध बलवान है।

  परोक्ष संस्कार का फल यह है कि—

  खाने को मिले, देह अच्छी रहे और लोक में इज्जत रहे, वह परोक्ष के आसरे का फल है।

  प्र. 1-301

- किसी भी प्रकार की चिंता आए, तो भगवान को सौंप देना। हम तो निर्बल हैं और वे बलवान हैं, सो वे रक्षा करने में समर्थ हैं। जैसी प्रहलाद्जी की रक्षा करी थी, यूं कई प्रकार से रक्षा करेंगे।

  प्र. 1-312

- भगवान का और बड़े साधु का जिसे निश्चय हुआ हो, वह अपने आप को पूर्णकाम माने और उसे अन्य किसी के संग की अपेक्षा नहीं रहती। उस पर दृष्टांत है कि—घर में सौ करोड़ मन दाने हों तथा सौ करोड़ रुपये हों, और यदि अकाल आ भी जाए, पर उसे मरने का डर नहीं लगेगा। दूसरा दृष्टांत है कि जैसे दो हजार अंगरक्षक साथ हों, उसे लुट जाने का डर नहीं रहता। ठीक वैसे ही महिमा सहित निश्चय वाले को कोई डर नहीं रहता।

  प्र. 1-317

- छोटे बच्चे को डर लगे तब वह अपने माँ-बाप के गले चिपक जाता है; वैसे ही हमें जब भी कोई दुःख आए, तो भगवान का भजन करना, स्तुति करना; सो भगवान रक्षा करेंगे ही।

  प्र. 1-319

- हमारा मत तो—भले ही कई क्रियाएं करवाएं, पर क्रियारूप होने नहीं देंगे और उसमें बंधने भी नहीं देंगे एवं उसका निषेध किया करेंगे और दूसरे तो जो क्रिया करायेंगे उसमें जोड़ देंगे। वह तो क्रियारूप होकर क्रिया करेगा और क्रिया में से निवृत्त हो, तो भी उसके मंसूबे किया करेगा और हमारा मत तो ऐसा है कि क्रिया करने में भी कभी क्रियारूप नहीं होना है और क्रिया निपटा कर भी उसके मंसूबे में डूबे नहीं रहना है और व्यवहार में रहे हैं, सो कारोबार तो करना पड़े, लेकिन उससे पूर्णता माननी नहीं है।

  प्र. 1-320

✷ किसी को भगवान प्रधान हो और किसी को व्यवहार प्रधान हो। इन दोनों को सरीखा फल कैसे मिल पाएगा ? यह बात भी समझ रखना।

प्र. 1-322

✷ भगवान के लिए हमने जो-जो किया है और कर रहे हैं वह सब वे जानते हैं और जिसकी गोद में सिर रख दिया है, वे निश्चित रक्षा करेंगे और हमारी तो भगवान खूब मान लेते हैं।

प्र. 1-331

✷ एक रुचि वाले दो ही हों, पर समझना कि लाखों व हजारों के बराबर हैं। वर्ना तो लाखों व हजारों हों, तो भी अकेला ही है यूं समझना।

प्र. 1-336

✷ भगवान को अपने भक्त को मारकूट कर भी ब्रह्मरूप करना है।

प्र. 1-337

✷ 'पूर्व-संस्कार' यूं कहा जाता है। यह 'पूर्व-संस्कार' अर्थात् 'पिछले जन्म' में जो कर्म किया इसी का ही संस्कार—यूं नहीं समझना। आज का क्रियमाण कल के लिए पूर्व संस्कार है। यूं हमें बड़े संत का जो संग हुआ है, वह आज बहुत बड़ा पूर्व संस्कार हुआ है।

प्र. 1-339

✷ कथा करे, कीर्तन करे, (भगवान की) बातें करे, किन्तु 'यह देह मैं नहीं हूँ' यूं नहीं माना जाता। सो, आठों प्रहर भजन करना कि 'मैं देह नहीं हूँ किन्तु देह में रही आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ, अक्षर हूँ और मेरे भीतर परमात्मा परब्रह्म पुरुषोत्तम प्रगट प्रमाण अखंड विराजमान हैं। वे कैसे हैं ? तो सर्व अवतारों के अवतारी हैं, सर्व कारणों के कारण हैं और सबसे परे हैं।' मुझे वे प्रगट रूप में ये जो मिले हैं वही हैं। इस बात में सांख्य और योग दोनों आ गए।

प्र. 1-343

प्रकरण-2

✷ जैसे गाय अपने बछड़े के लिए दूध छोड़ती है, वैसे ही शिष्य (यदि) अपने गुरु को मन सौंपे तो (गुरु उसके) अंतःकरण का अज्ञान टाल दे, पर मन सौंपे बिना तो टले नहीं।

प्रकरण : 2-4

✷ अच्छे भगवदी के साथ जीव बांधना वही सत्संग में टिके रहने का उपाय है, लेकिन सत्संग में टिके रहने के लिए अकेली भक्ति काम नहीं आएगी। ज्ञान के बिना तो सब कुछ कच्चा है और अच्छे भगवदी के साथ जीव बांधा था, तो करसनदास और महाविर्यानंद सत्संग में टिक पाए और उसके बिना तो राघेश्वरानंद और हिरण्यगर्भानंद चले गए और हमीर ने भी खूब भक्ति करी थी, तो भी वे गए। वह बात खूब खुल करके कही।

प्र. 2-8

✷ सिर्फ ज्ञान कहना और सुनना कठिन नहीं है। सो दो घड़ी वृत्ति को पीछे मोड़ कर भगवान को याद करना और ध्यान ना हो पाए तो भजन करना; लेकिन भोजन तैयार होने के बावजूद भी खाये नहीं तो भला किस काम का ? सिर्फ ज्ञान की बातों से विषय कम नहीं होने वाले। वह तो भगवत्स्मरण से होगा और जो भगवान को याद करने लग पड़ता है, उसी पर भगवान की और बड़े साधु की कृपा दृष्टि होती है। लेकिन उस मार्ग पर तो चले नहीं, फिर उस पर भला दृष्टि कैसे हो? सो, भगवान का विश्वास रख कर लग पड़ना चाहिए। जैसा संग करेंगे, वैसे हम होंगे। जिसमें कोई गुण नहीं होगा, उसके संग से हम में गुण कहां से आएगा? जो-जो भगवान में चिपके होंगे और जिनके विषय कम हुए होंगे उनके संग से वे गुण आएंगे, इस बात में तनिक भी संशय नहीं है। जिसका जो अंग होता है, उसी बात का वह मुख्यतया प्रतिपादन करता है-यह बात समझ कर रखनी। धर्म, ज्ञान, वैराग्य ये तीन—जीव के सुख के लिए हैं। भगवत्स्मरण भी है तो जीव के सुख के लिए ही, लेकिन उसे महाराज यूं मान लेते हैं कि उनके लिए किया है।

प्र. 2-12

✷ अब तो गृहस्थ घर में जकड़े रहेंगे और त्यागी क्रियायोगों में ! जैसे कोई कामी पुरुष स्त्री को देखता रहता है, ठीक वैसे ही भगवान जीव के सामने

देखते रहते हैं कि भला कोई मेरा स्मरण करता है क्या? किन्तु जीव ऐसा उल्टा है कि वह अन्य पदार्थों को देखता रहता है, परन्तु भगवान के सम्मुख नहीं देखता।

प्र. 2-14

✷ महाराज भले कितनी ही प्रवृत्ति करवाते, लेकिन पास में पुस्तक निरंतर रखते और हरे ! हरे ! करते; वे हमें सिखाते थे। महाराज ने कहा था कि कई बड़ों-बड़ों को तो प्रवृत्ति में नहीं जुड़ना; क्योंकि पहले ऋषि प्रवृत्ति में जुड़े थे, वे आह्निक भूल गए थे; बाद में फिर किसी वृद्ध से सीखे, उसके बाद शास्त्र बनाए।

प्र. 2-16

✷ शानदार कोठियाँ जो मिली हैं और अच्छा-अच्छा खाना जो मिलता है या मान मिलता है वग़ैरह मनुष्य देह का फल नहीं है। वह तो प्रभु के जो भक्त नहीं हैं, उन्हें भी मिलता है। मनुष्य देह का फल तो अच्छे साधु का संग और स्वभाव टलें यही है।

प्र. 2-19

✷ एक ही काम करते-करते जीव थक जाता है। इसलिए बदल-बदल कर करना। वह क्या ? तो कथावार्ता सुननी, पढ़ना, ध्यान करना, जप करना–इनमें से एक में जब थकावट लगे, तब दूसरा करना। वर्ना घुटन होगी और मन तो जीव को दुःखी करे ऐसा है।

प्र. 2-20

✷ संत की महिमा कही कि– ऐसे साधु के दर्शन से भगवान के दर्शन का फल प्राप्त होता है व इनकी सेवा करने से भगवान की सेवा का फल प्राप्त होता है और ऐसे साधु से हमें प्रीति हुई है, अतः हमारे पुण्य का तो पार ही नहीं है।

प्र. 2-21

✷ कई रसोई करते हैं, पानी भरते हैं और कई लिखते हैं, अभ्यास करते हैं और कई चारा काटने जाते हैं और कई पशु को चराने जाते हैं-वग़ैरह क्रियाएं करते हैं।इसे तो यूं जानना कि यह सब तो देह का व्यवहार है वह करना चाहिए, लेकिन दरअसल करना तो कुछ और है। वह क्या? तो –महाराज की मूर्ति की स्मृति में रहना और उपासना व ज्ञान सीखना और सत्संग-कुसंग को पहचानना तथा सत्संग में टिक पाने की नींव मजबूत करनी इत्यादि जो करना जरूरी है वह करना और मनुष्य को क्रियाएँ जो-जो करने को कहेंगे, वो करने सभी तैयार हैं, लेकिन जो करना है वहीं अटकते हैं; पर ज्ञान के बिना तो सब कुछ कच्चा है तथा अंतर में बुरे संकल्प जो उठते हैं, वह भी ज्ञान की कसर है और महाराज

पूछते थे कि इसे किस साधु के साथ लगाव है और किस साधु के पास इसकी उठक-बैठक है? यह तलाशने के लिए कहते।

प्र. 2-22

- बकरे, गाय, भैंसे और ऊँट ये सभी बाड़े में रह सकते हैं लेकिन शेर तो बाड़े में नहीं रह सकता। यूं मुमुक्षु कोई मत में या विषय में बंधे रहते नहीं हैं— ऐसा महाराज कहते और महाराज थे तब भी जिन्होंने समागम नहीं किया और आज भी जो बड़े संत का समागम नहीं करते, उन्हें कुछ ज्यादा अक्लमंद समझना क्या? दरअसल बुद्धि तो वही कि जो बड़े साधु से सीखी हो और मोक्ष के काम में आए; बाकी कोई 'बुद्धि' नहीं और महाराज कहते कि नाथभक्त बुद्धिशाली हैं और दिवानजी मूर्ख हैं और व्यवहार है वह तो गुस्लखाने जैसा है। वह तो चाहे जितना भी साफ रखा जाए, तो भी बिगड़ा ही रहता है; उसमें कोई सार नहीं। इस बात पर सूरत के सँडास का दृष्टांत दिया।

प्र. 2-23

- एक जना एक मंदिर में पांच सौ रुपये भेंट रख कर चला गया, इसके बजाय यदि इतने रुपयों से बैठे-बैठे खाकर साधु का समागम किया होता, तो बहुत अच्छा रहता।

प्र. 2-25

- बड़े संत की आज्ञा से करना वह तो— 'गणेशजी ने गौ की परिक्रमा करी' वैसा है और मनमानी करना वह तो कार्तिक स्वामी की तरह पृथ्वी की परिक्रमा करने जैसा है। आज्ञा से थोड़ा करें, तब भी वह ज्यादा है और मनमाना खूब करें, तब भी वह न्यून होता है। जिस आज्ञा में धर्मनियम के पालन में फर्क पड़ता हो वहां तो जो योग्य हो वह करना।

प्र. 2-26

- भगवान को याद करके जो-जो क्रिया करते हैं वह ना के बराबर है (अर्थात् उसका बंधन नहीं लगता) और वह अकर्ता है और उसके बिना तो खाली बैठा रहे, फिर भी वह कर्ता है। भगवान को याद करके जो खाता है, बोलता है, देखता है, सोता है, चलता है इत्यादि जो-जो क्रियाएं करता है, वह कुछ करता नहीं है और वह तो अकर्ता है।

प्र. 2-29

- भीतर में भजन करना सीखना। इससे विषय के राग (आसक्ति) कम होते हैं।

प्र. 2-30

- सत्संग करने में और करने वाले में भी बहुत फर्क है, क्योंकि महाराज का संग कई - कितने साधुओं ने किया और गृहस्थों ने भी किया, लेकिन समझ

में खूब फर्क पड़ा है। समागम करने और साथ में रहने में भी खूब फर्क है, चिचड़ी गाय की आंव में रहती है, लेकिन उसे दूध का स्वाद आता नहीं है और बछड़ा अलग-सा रहता है, तब भी उसे दूध का स्वाद मिलता है।

प्र. 2-34

✷ निरंतर सभी क्रियाएं करते हुए भीतर में मुड़ कर सोचना कि मुझे भगवान भजने हैं और मैं यह क्या कर रहा हूँ ?

प्र. 2-35

✷ सत्संग करने में और समझने में खूब कसर रह जाती है। महाराज के होते हुए जब दर्शन मिलते थे, तब दस-बीस साधु तो घड़ी भर भी उनसे दूर नहीं जाते थे और चाहे कितनी ही थकान लगी हो, पर रात को (यदि) दर्शन होते हों, तो सारी रात दर्शन करते रहते और कई तो आराम से सोए रहते। यूं समझ में भी काफी फर्क है।

प्र. 2-36

✷ मुमुक्षु को तो हमेशा कोई सावधान रखने वाला चाहिए। वे हों तो भगवान भज पाते हैं। वर्ना आहते से जैसे बाघ बकरे को उठा ले जाता है, वैसा होता है।

प्र. 2-37

✷ ब्रह्मऋषि और राजऋषि–इसमें ब्रह्मऋषि का मार्ग उत्तम है, लेकिन वह कठिन है। राजऋषि का मार्ग प्रमुख है और अधिकतर तो वही पार उतारे ऐसा है। विद्याएं तो खूब हैं, लेकिन पढ़ने जैसी तो 'ब्रह्मविद्या' है और उसी में माल है और आखिरकार वह सीखे बिना छुटकारा भी नहीं, परन्तु जीव उस मार्ग पर चलता नहीं है।

प्र. 2-38

✷ बड़े संत का समागम तो भगवान के संग रहने से भी अधिक है; क्योंकि भगवान तो मनुष्य चरित्र करें तब ज्ञान की कसर हो तो संशय हो जाए और उल्टा पड़े। सो, साधु का समागम अधिक है और दस हजार रुपए खर्च करने के बजाय, मंदिर से गुज़ारा करके साधु का समागम करना और ज्ञान पा लेना अधिक है; क्योंकि पहले वाले को विपरीत माहौल हिला जाएगा और इसे हिला नहीं पाएगा। महाराज ने भी कहा है कि जितना मैं सत्संग से वश होता हूँ, इतना अन्य साधनों से वश नहीं होता। कोई सत्संग करे तो वह संसार से भी छूट जाता है।

प्र. 2-39

✷ समागम करने की पद्धति बताई–
सर्वप्रथम किसी एकांतिक साधु के साथ जी को जोड़ देना। वह साधु तो भगवान में ही रहते होंगे, अतः भगवान के गुण उसमें होंगे। वह साधु के गुण

समागम करने वाले में आते हैं। पर जी यदि ठीक से जोड़ेंगे नहीं, तो गुण आयेंगे नहीं। यह आज करो या हज़ार जन्म के बाद करो, किन्तु आखिरकार यह किये बिना चारा नहीं है।

प्र. 2-41

✷ सिर पर शासक ना हो, तो स्वतंत्र रूप से तो जीव देह का ही कीड़ा बन कर रहे, ऐसा है।

प्र. 2-43

✷ साधु की बातों की गति तो काल (समय) जैसी है। वह दिखाई नहीं देती, पर अज्ञान टाल देती है; जैसे बालक में से जवान हो और फिर वृद्ध होता है वह नज़र नहीं आता। दूसरी जगह जो काम एक कल्प में होता है, उतना काम यहाँ एक दिन में होता है।

यदि अक्षर के मुक्त को भी कोई कसर रह गई हो, तो उसे भी कसर टालने भगवान के साथ यहाँ आना पड़ता है। इसलिए जिसे कसर टालनी हो उसके लिए तो यहाँ के बराबर और कोई अच्छा जोग नहीं है।

प्र. 2-45

✷ दूसरे को हिम्मत देने के लिए बड़े (संत) यूं बात करें कि एक दिन मुझे भी– जिह्वा ने छला और एक दिन आँखों ने छला, सो रूप को निहार लिया। यूं सभी इंद्रियों के बारे कहना।

प्र. 2-49

✷ अपने से थोड़ा हो सके तो थोड़ा करना और हाथ जोड़ना। किन्तु छल कपट नहीं करना, इधर-उधर नहीं हो जाना। बड़े संत के पास जीवन यदि सरल रहे, तो संत सहज ही संभाल रखते हैं; इस बारे कोई संदेह नहीं है और जगत में भी तो यही रीति है कि जो जिसका होकर रहेगा उसकी फिकर उसे करनी पड़ती है। इसी प्रकार बड़े संत भी खबर रखते हैं।

प्र. 2-50

✷ बीमारी आवे उसमें हिम्मत हार जाने से दुःख तो मिटता नहीं है। उसमें जो हिम्मत रखे वह महाराज को जँचता था।

प्र. 2-52

✷ पाँच प्रकार से स्त्री भोगी जाती है–त्वचा से, नेत्र द्वारा, कान द्वारा, जिह्वा द्वारा और मन में संकल्प से।

प्र. 2-53

✷ 'सत्संग में मैं भी सबके बराबर हूँ' ऐसा समझना नहीं, बराबरी करनी नहीं और अपने आपको ऐसा (समकक्ष) समझना, यह ही खोट है।

प्र. 2-54

✷ संत कहे वैसा करना श्रेष्ठ है और अपनी मनमानी करना कनिष्ठ है। महात्यागी हो, सारे मंदिर का काम अकेले करता हो और चाहे कईओं को सत्संग कराता हो, किन्तु मनमानी करता हो तो वह न्यून है और उसे कभी न कभी विघ्न आ सकता है। दूसरा तीन टाने खाने खाता हो, आलसी हो और सोता ही रहता हो– ऐसे दोषयुक्त हो, किन्तु अपनी मनमानी छोड़ कर संत के कहने पर चलता हो, तो वह उससे अधिक है।

संत कहें वैसा करना निर्गुण है और मनमानी करना सगुण है। ये त्यागी बैठे हैं उनमें भी आधे तो मनमानी करते होंगे व कई गृहस्थ भी मनमानी करते हैं। जिनका दस जने प्रमाण करें वे सही माने जाते हैं पर एक का कहा प्रमाण नहीं माना जाता।

प्र. 2-57

✷ स्त्री बिच्छु का डंक है और द्रव्य सांप का डंक है। शास्त्र में बात तो बीज मात्र लिखी होती है। उसका ज्ञान तो गुरु से ही समझ में आता है।

प्र. 2-59

✷ जैसा आग्रह दूसरों को समझा देने का रहता है, वैसा ही स्वयं समझ लेने का रखें और जैसा आग्रह दूसरों के दोष देखने का रहता है वैसा ही अपने दोष टालने का हो तो, कोई कसर रहेगी ही नहीं।

प्र. 2-61

✷ शास्त्र में सत्पुरुष की यह नसीहत है कि बड़े संत यदि प्रसन्न हो जायें, तो सारे कार्य सम्पन्न हो जायें। बड़े संत को राजी करने के चार उपाय हैं–

1. उसे जो पदार्थ चाहिए वह देना,
2. इनकी देह की सेवा करना,
3. इनके पास हाथ जोड़ कर विनय करना और
4. उनकी अनुवृत्ति यानि-मर्जी !

अनुवृत्ति में तो सभी बातें आ जाती हैं। अनुवृत्ति के मुकाबले और कुछ नहीं है।

प्र. 2-62

✷ बड़े संत की संगत निरंतर रखनी। क्या मालूम किस समय कैसी बात हो जाये? अपने मन को मारना, पर उसका कहा नहीं करना। महाराज कहते थे–'जैसे बकरे को मुँह में जौ भरकर मारते हैं; वैसे ही अपने मन को मारना और भगवान एवं बड़े साधु के पास झुक जाना। वहाँ अपनी समझ एक ओर रख देनी। वे तो खूब दयालु हैं, सो खूब रक्षा करेंगे।'

प्र. 2-64

✷ तीन प्रकार के मनुष्य सत्संग में होते हैं, उसका ब्योरा कि–ज्ञानी, जो कि सीखता है और सेवा करता है, वह प्रगति करता जाता है, जो देहाभिमान

बढ़ाता रहता है वह घटता जाता है और कई तो ऐसे के ऐसे ही रहते हैं और बढ़ते-घटते नहीं हैं। यूं तीनों प्रकार हैं। उन्हें बड़े संत देखते हैं और देह से मोटा होते जाना, वह भगवान तथा संत को पसंद नहीं है और मुमुक्षु को भी वह देखकर दुःख होता है।

प्र. 2-65

✷ इस जीव को भीतर में जितना सुख रहता है या अन्न-वस्त्र मिलता है वह सब कुछ बड़े संत की कृपा दृष्टि के कारण है; लेकिन जीव खुद में बरकत मान कर आचार्य तथा बड़े संत को मोहताज़ करता है, लेकिन खुद मोहताज़ होता नहीं है, लेकिन बड़े साधु की दृष्टि यदि ज़रा-सी भी हट जाए, तो अंतःकरण चंडाल जैसा हो जाए व सुख भी रहेगा नहीं।

प्र. 2-66

✷ तीन प्रकार का दुःख कहा जाता है; उसमें से दो दुःख अभी नहीं हैं। 'अधिभूत' कि कोई मारता नहीं और 'अधिदैव' कि अकाल पड़ता नहीं और अब 'अध्यात्म' यानि मन की पीड़ा-वह बाकी रही है। उसे टालने का उपाय तो ज्ञान है। यदि वह हो, तो दुःख नहीं होगा। उसका दूसरा उपाय नहीं है।

प्र. 2-67

✷ इस लोक में दो दुःख हैं। एक तो अन्न-वस्त्र ना मिले या ना पचे। इनके अलावा तो अज्ञान का दुःख है।

प्र. 2-71

✷ स्त्री जाति मात्र का विश्वास नहीं करना। उसमें महाराज ने दो का बखान किया है, लेकिन उनमें भी खोट बताई है। सीताजी ने लक्ष्मणजी को टोना मारा और द्रौपदी के टोने से 'महाभारत' हुआ।

प्र. 2-72

✷ पिता के हृदय में स्त्री है, सो लड़कों की शादी कराता है और साधु के हृदय में भगवान है, सो जीव के हृदय में वह भगवान की मूर्ति स्थापित करता है।

प्र. 2-75

✷ जीव को भगवान के सम्मुख जाने में अंतरायरूप किले हैं। इस लोक में बिरादरी, परिवार, माता-पिता, स्त्री, धन, इन्द्रियां और अन्तःकरण—ये किले हैं।

प्र. 2-79

✷ दो प्रकार के लोग मंदिर में और मण्डल में हैं। एक तो स्वयं (गरज से) रहा हो और दूसरे को रखना (संभालना) पड़ता हो। इनमें से अपने आपका ढूंढ लेना।

प्र. 2-80

✷ भगवान और बड़े संत को जीव सौंप दिया हो, पर उसे भी ज्ञान तो सीखना पड़े। क्योंकि सीखे बिना तो आएगा नहीं व महाराज का भी यही मत है कि ज्ञानी होना। बाकी सब कुछ तो होता है और होगा, लेकिन यह करना जरूरी है और किसी भी तरह कोई द्रव्य से इस जीव का पूरा होता नहीं है। ज्ञान हो तो कुछ अधूरा ही नहीं रहे।

प्र. 2-82

✷ इस जीव ने कोटि कल्प से अपनी मनमानी ही करी है। वह भी कितने कल्प से—यह तो कहा नहीं जाये। पर अब तो इस देह से भगवान की मर्जी अनुसार कर लेना और आज्ञा मानने में प्रपंच नहीं करना व जो-जो मिले वह सबका उपभोग नहीं करना, कुछ छोड़ भी दिया करना। ऐसा सबको कहा।

प्र. 2-83

✷ 'भक्ति' यानि—मंदिर की क्रिया की जो विशेषता अंतर में रहती है और जैसे उसके संकल्प उठते हैं वैसा ही भगवान का प्राधान्य नहीं रहता, ना ही संकल्प उठते हैं। ज्ञान के, उपासना के और भगवान से प्रीति करने के संकल्प भी नहीं उठते—वे करना।

प्र. 2-85

✷ मुँह में खाना खाने के लिए नीचे के दांत मुसली और ऊपर के दांत खरल की जगह पर हैं, लेकिन यह ध्यान दिए बिना ख्याल पड़ता नहीं है वैसे ही देह और आत्मा (दोनों) अलग हैं, पर सोचे-करे बिना ख्याल आता नहीं है। ढूंढे तो पता चलेगा कि सौ वर्ष पहले बिरादारी में कोई नहीं था और सौ वर्ष के बाद हममें से कोई नहीं रहेगा।

प्र. 2-86

✷ इस सत्संग में और मंदिर में अनेक प्रकार के मनुष्य हैं। उनमें कई तो यहां साथ में रहते हुए भी शत्रु हैं और कई तो हक़दावा करने वाले और मजदूर जैसे हैं और कई साथी जैसे हैं, मेहमान जैसे हैं, सगे (रिश्तेदार) जैसे हैं, लड़के जैसे हैं और कई मालिक जैसे हैं, इतने भेद हैं।

प्र. 2-87

✷ सभी किसी ना किसी आधार से सुखी रहते हैं। लेकिन भगवान व आत्मा—इन दोनों से ही सुखी रहना चाहिए। अनेक प्रकार के दूसरे आधार छोड़ देना।

प्र. 2-88

✷ यदि रुचि अच्छी बनी हो और विषय में खींचा जाता हो, उसमें यदि रुचि का पलड़ा भारी हो तो कसर टल जाएगी और यदि वासना अधिक तीव्र होगी तो 'विषय' देंगे, पर आखिरकार तो छुड़वा ही देंगे। धर्म में जो ढीला-ढाला हो वह

बड़े संत के पास दब जाए कि नहीं? उसका उत्तर दिया कि दैवी हो तो दब जाए और आसुरी हो तो नहीं दबेगा।

प्र. 2-91

✷ एकांतिक साधु के सिवा और किसी को जीवलक्षी सच्ची प्रीति करनी आयेगी नहीं। दूसरे तो प्रीति करके इन्द्रियों के भावों की पुष्टि करेंगे। इससे तो दरअसल बुरा ही होगा।

प्र. 2-92

✷ लाखों का त्याग करके एक भगवान को रखना। महाराज भी कहते थे कि पांडवों ने सब कुछ छोड़ कर भगवान श्री कृष्ण को रखे थे।

प्र. 2-93

✷ कल्याण की गरज कैसी रखनी चाहिए? तो, जैसे उन्नहत्तर के अकाल में भीमनाथ में भीख मांगने आते थे व गिड़गिड़ाते थे और धक्के मारने पर भी वहाँ से जाते नहीं थे, ठीक ऐसी गरज रखनी चाहिए।

प्र. 2-95

✷ आज्ञा पालेंगे उतनी वासना जलेगी; वह आज्ञा कौन-सी? शिक्षापत्री, निष्कामशुद्धि, धर्मामृत के नियम पाल कर वासना टालनी। मन के संकल्प बंद करने - वो तो मुश्किल है, लेकिन स्थूल देह से वर्तना तथा आज्ञा पालनी - यह तो हो पाए ऐसा है और उसमें फर्क डाले इतना कुसंग है।

प्र. 2-99

✷ जहां से अचानक ही चल पड़ना है उसके लिए परिश्रम करते रहते हैं और जहां से कोटि कल्प तक भी उठना नहीं है, उसके लिए कोई उद्यम नहीं ! यह अज्ञान है।

प्र. 2-101

✷ उत्तम तो शास्त्रों में से समझ ले और मध्यम तो साधु द्वारा कही बातों से समझे और कनिष्ठ तो देरी से समझे। ये तीन–मुक्त, मुमुक्षु और विषयी हैं। कोई क्रिया करने में हमें यदि कोई परेशानी आए, तो कहना कि मुझे और कुछ बताओ लेकिन परेशान नहीं होना।

प्र. 2-104

✷ संसार से चिपके बिना रह ही नहीं पाएंगे, लेकिन यदि अच्छे साधु का निरंतर समागम रखेंगे, तो उखड़ सकते हैं वर्ना तो चिपके ही रहेंगे।

प्र. 2-113

✷ विषय का संबंध होने से पहले तो बकरे की भाँति डरना, पर यदि संबंध हो जाए तो फिर शेर हो जाना।

प्र. 2-114

✷ जीव का स्वभाव बद्ध है। वह त्यागी में बंध जाए और गृहस्थ में भी बंध जाए व पदार्थ में भी बंध जाए तथा देश में, गाँव में बंध जाए और आसन में (बैठक में) बंध जाए और कोई एक जगह रहे तो वहां बंध जाए और नात-जात में बंध जाए, यूं बंध जाने की अनंत जगह हैं। इसलिए टोपी वाला (अंग्रेज़) किसी को एक जगह रहने नहीं देता।

प्र. 2-115

✷ ब्रह्मांड के सारे जीवों को खिलाने की अपेक्षा एक भगवदी को खिलाना अधिक है।

प्र. 2-117

✷ सत्संग में अनेक मुक्त हैं, उनमें भी फर्क है। कई मुक्त तो मंदिर, भवन और धर्मशाला बनवाएं ऐसे हैं, खेत, वाड़ी, बाग, बगीचा करें ऐसे हैं और कितने तो द्रव्यों की आमदनी कराएं ऐसे होते हैं और कई गांव-जागीर दें–ऐसे हैं। ऐसे मुक्त तो बहुत हैं, लेकिन ऐसे थोड़े ही होते हैं, जो उपासना, आज्ञा और ज्ञान ये तीन बातें प्रर्वताएं। माल तो इन तीन बातों में ही है और धर्म तथा वैराग्य तो उसके घेरे में ही आ जाते हैं। बाकी सब तो इन तीन बातों का प्राधान्य रखा जाए तो अपने आप हो जाए। लेकिन यह प्रर्वताएं ऐसे मुक्त बहुत कम होते हैं; पर माल तो इसमें ही है और खूब सोच करके यह निचोड़ निकाला है, सो वह बताया है।

प्र. 2-120

✷ बड़े संत के साथ जी जोड़ा हो और यदि परिस्थितियां विपरीत हो जायें या उसका सत्संग तक छूट जाने की नौबत आ जाये, तो संत उसका प्रायश्चित् अपने सिर पर ले लेते हैं या उसको प्रायश्चित् करने का बल देते हैं या आखिरकार उसे कोई रोग लाद कर भी सत्संग में रखते हैं, किन्तु उसे जाने नहीं देते।

प्र. 2-121

✷ तीन बातें सबसे अधिक रखनी। बाकी अन्य गुण–त्याग वैराग्यादि तो किसी में कम हो और किसी में ज्यादा। वह तीन बातें क्या?

एक तो–उपासना,

दूसरी–आज्ञा

और तीसरा–भगवदी के साथ सुहृदभाव। ये तीन बातें रखनी। ये तीन जिसमें हों वह बड़े पुरुष को भाता है।

प्र. 2-126

✷ बड़े संत के पास निष्कपट होने में बहुत लाभ है। किसी ने रूप देख लिया और वह उसके दिल में बस गया। उसने वह सारी बात बड़े संत को खुलकर बता दी। संत ने महाराज की स्तुति करके वह टाल दिया।

प्र. 2-128

* स्मृति सहित व स्मृति रहित में क्या फर्क है ? जैसे बसी व्यक्ति व ठाली व्यक्ति और भरी बैलगाड़ी व खाली बैलगाड़ी के बोलने, चलने, खाने, सुनने इत्यादि सब क्रिया में फर्क है।

  प्र. 2-129

* बड़े (संत) की महिमा समझना कठिन है। क्योंकि ब्रह्मांड की भी वह गिनती न रखे, पर लौकिक तुच्छ पदार्थों की संभाल रखता दिखाई पड़े—यह बात कैसे समझ में आयेगी।

  प्र. 2-130

* सेवा तो अपनी श्रद्धा के मुताबिक करना, परंतु असेवा तो कभी नहीं करना। असेवा क्या? दूसरों में दोष देखना।

  प्र. 2-133

* इस जीव को मक्खी में से सूर्य बनाना है। वह परिश्रम किये बिना तो होगा नहीं। वह तो गुरु व शिष्य दोनों में श्रद्धा चाहिए।

  प्र. 2-134

* जीव प्राणी मात्र के मन को रहने का ठिकाना महाराज ने बताया। पुरुष का मन स्त्री के गुह्य अंग में और स्त्री का मन पुरुष के गुह्य अंग में !

  प्र. 2-135

* देह—जो कि 'हम' नहीं हैं वह साक्षात् दिखाई पड़ता है और अपने आपको देह मान लिया है, वही अज्ञान है।

  प्र. 2-136

* महाराज की मर्जी के विरुद्ध होकर जो टेढ़ा चलेगा उसे सारे ब्रह्मांड की उपाधि में जोड़ेंगे और अधिक ज्यादा टेढ़ा चलेगा, तो उसे अनंत ब्रह्मांड की उत्पत्ति में जोड़ेंगे, फिर उसमें परेशान होगा और वहाँ तो आज्ञा करें तो किसी की हिम्मत नहीं कि मना कर सके; जैसे राजा का हुक्म जनता टाल नहीं सकती, पर यहाँ मनुष्यभाव रहता है इसलिए मानते नहीं हैं।

  प्र. 2-137

* जब भगवान प्रसन्न होते हैं तब बुद्धियोग देते हैं या बड़े संत का समागम देते हैं।

  जब तक किसी में रज, तम इत्यादि हैं, तब तक उसमें धर्मादिक गुण दिखाई भले ही देते हों, पर उसकी एक स्थिति नहीं रहती ऐसा पंचम स्कंध में कहा है।

  प्र. 2-140

✷ द्रव्य का प्राधान्य ना हो ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं। हां, जिसकी निगाह केवल महाराज की ओर हो उसे द्रव्य प्रधान नहीं होगा। सो कहा गया है कि–'ऐसी कौन सी चीज है इस धरती पर, जो प्रभु में लुभे हैं उन्हें लुभा पाए?' ऐसों को द्रव्य प्रधान नहीं हो सकता, बाकी तो सभी को होगा।

प्र. 2-141

✷ देह छूट गई सो क्या हुआ ? जीवात्मा की कहाँ मृत्यु होती है ? दरअसल तो साधु होना, साधुता सीखनी व स्वभाव छोड़ने–यही करना है।
मर गये सो सब कुछ पूरा हो गया, कुछ करना शेष नहीं रहा–ऐसा नहीं समझना।

प्र. 2-143

✷ माला फेरनी यदि आ भी गई, तो उससे क्या ? ज्ञान जैसी तो कोई संपत्ति नहीं है व ज्ञान के बिना तो सब कुछ कच्चा है।

प्र. 2-145

✷ मान-अपमान में अपने आपको 'अक्षर' मानना। हमसे बड़ा कोई है ही नहीं, सो किससे मान-अपमान पाना ?

प्र. 2-149

✷ गाय बछड़े की मां कही जाती है, परंतु बछड़े को दूध का सुख तो उसके थन से ही आयेगा, दूसरे किसी अंग से नहीं।
उसी प्रकार भक्ति तो कई कही जाती हैं, परंतु सच्चा सुख तो भगवान की मूर्ति में से जैसा आयेगा वैसा और कहीं से नहीं आयेगा।

प्र. 2-150

✷ प्रारब्धवश होकर जीव दुःख सहन करता है, वैसे अपने कल्याण के लिए नहीं करता।
बिच्छु ने काटा हो तो सारी रात जागेगा। (किन्तु भगवान के भजन के लिए नहीं !) इस प्रकार कई बातें करी।

प्र. 2-152

✷ कैसा ही उत्तम स्थान हो वहाँ जाकर रहे, तब भी जीव वृद्धि को नहीं पायेगा। वह तो संत के संग से शक्य है, पर उसके बिना नहीं हो सकता।

प्र. 2-153

✷ लोक, शास्त्र और अनुभव ये तीनों में मेल खाए और मेल ना खाए की बात महाराज ने बताई कि–शादी करके स्त्री रखे, वह तीनों में मिलता है और व्यभिचार करना वह लोक में मेल नहीं, भीतर में मेल नहीं और शास्त्र सम्मत भी नहीं और अंतर में भी सुख नहीं रहेगा; वैसे ही वर्णाश्रम की

मर्यादा में रह कर खाना खाएं वह तीनों में मेल खाता है। पर, उसके विरुद्ध करना, वह तीनों में नहीं मिलता-वह ढूंढना वो वेद के मुताबिक बात है।
प्र. 2-154

* महाराज ने कहा था कि संकट आये तो दूब (तिनके) को दंडवत् करना; इसमें रह कर मैं सहाय करूंगा।
प्र. 2-155

* सत्संग से गिर न जायें, इस हेतु महाराज ने कहा है—यदि सब साधु-सत्संगियों के साथ जी जोड़ दें तो नहीं गिरेंगे। यूं कह कर कम करते-करते आखिरकार कहा कि दो अच्छे साधु और चार सत्संगी के साथ भी यदि जी जोड़ दिया हो तो नहीं गिरेंगे। वर्ना माहौल विपरीत होने पर गिर सकते हैं।
प्र. 2-157

* पांच बातें सानुकूल हों तब प्रभु भजा जा सकता है; वह है—संग, शास्त्र, श्रद्धा, अच्छा देश व अच्छा काल।
प्र. 2-158

* हमें तो बहुत बड़ा लाभ हुआ है व बहुत बड़ी प्राप्ति हुई है, पर हमारी समझ में नहीं आता। जैसे पृथ्वी का राज पुत्र किसी तुच्छ पदार्थ के लिए रोये, वैसे ही हमें महाराज व बड़े संत का संबंध हुआ है पर इस जगत के तुच्छ विषय न मिलने पर या नष्ट होने पर शोक होता है व उदास हो जाते हैं—उन्हें यह बात समझ में नहीं आती।
प्र. 2-159

* एक व्यक्ति सारा दिन चिनाई करके किला बनाता है और दूसरा उस पर एक छोटा-सा कंकड़ मारकर उसे गिरा देता है। इन दोनों में आखिर चिनाई करने वाला थकेगा।
कहने का तात्पर्य यह है कि कोई सारा दिन कारोबार करे, पर एकादि घड़ी सत्पुरुष की बातें सुने तो क्रिया का पाश लगेगा नहीं।
प्र. 2-160

* जब तक अपने आपको पुरुष मानेंगे तब तक स्त्री चाहियेगी और जब तक अपने आपको स्त्री मानेंगे तब तक पुरुष चाहियेगा। कहीं भी जाइये, ऐसा ही होगा। अतः कहा है कि (प्रकृति पुरुष से पर) ब्रह्मरूप होकर भक्ति करना।
प्र. 2-161

* अक्षरधाम, श्वेतद्वीप, बद्रिकाश्रम व इस लोक में एकांतिक साधु के पास—इन चार जगह पर माया नहीं है—क्लेश नहीं है, बाकी सब ठिकाने माया और क्लेश है।
प्र. 2-162

✷ ज्ञान बिना तो सुख नहीं होगा और जो भक्ति करे उसे बड़े पुरुष हार दें या थाल (प्रसाद) दें, पर उससे संकल्प तो कम नहीं होंगे। सो ज्ञान तो चाहिए ही–यूं बात करी।

प्र. 2-164

✷ इतना समझना कि विषय में यदि सुख होता, तो महाराज उसकी हम पर बंदिश क्यों रखें? सो, उसमें सुख है ही नहीं, पर उसमें सुख मान लिया है वह अज्ञान है और बड़े-बड़े भी इस रास्ते चलते नहीं हैं।

प्र. 2-165

✷ सत्संग में अनेक बातें समझनी हैं, उसमें मुख्य है उपासना; बाकी धर्म रखना व वचनामृत आदि शास्त्रों का अभ्यास रखना।

प्र. 2-166

✷ परेशानी टालने का उपाय–
काल की गति जाननी,
जन्म-मृत्यु का दुःख विचारना,
भगवान की महिमा विचारनी
और अपना कोई नहीं व हम किसी के नहीं व आत्मा तो तीनों देह से अलग है। इस प्रकार ज्ञानी को तो अनंत लोचन है व परेशानी टालने के भी अनेक उपाय हैं व परेशानी भी कई प्रकार की हैं।

प्र. 2-167

✷ पहले कुछ नहीं था और अब इतने कारखाने हुए हैं व अभी हो रहे हैं व और होंगे। यह सब तो बढ़ता ही जायेगा, पर मुख्यतया तो कथावार्ता, ध्यान व बड़े संत का समागम–यही करना है।

प्र. 2-168

✷ भगवान का स्वरूप निर्दोष समझना और बड़े-बड़े एकांतिक साधुओं को भी यूं समझना, उसके बराबर (अन्य) कोई साधन नहीं है। वचनामृत में कहा है, यूं चार शास्त्रों से समझना तथा स्वरूप निर्णय में कहा है यूं सभी प्रकार से निर्बंध और निर्दोष समझना है। ऐसा 'आत्यंतिक प्रलय' जो कि 'ज्ञान प्रलय' है - वह करने तक समझना है। जिसका आत्यंतिक प्रलय हुआ हो, उसके साथ जुड़ जाने से वह होगा।

प्र. 2-172

✷ कोई चाहे कैसा भी हो उसे भी सेवा करके या पदार्थ देकर खुश करें। परंतु, पदार्थ से प्रसन्न न हों ऐसे तो कृपानंदस्वामी, मुक्तानंदस्वामी, गोपाळानंदस्वामी ! वे किसी भी तरीके से वश नहीं होंगे, क्योंकि उन्हें तो कोई सेवा या कोई पदार्थ

चाहिए नहीं। लेकिन वे एक उपाय से जीते जाएं। उनके पास दीन होना और उन्हें हाथ जोड़ना; इसके अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है।

प्र. 2-173

✷ भक्ति में स्वभाव बढ़ते हैं और ध्यान में देहाभिमान। इन दोनों गुणों में रहे यह दो दोष समझना और टालना।

प्र. 2-177

✷ जिस पर बड़े संत की प्रसन्नता हो उसे भीतर में सुख महसूस होता है और देह में तो सुख-दुःख आये, इस बारे तो कोई भरोसा नहीं है। परंतु हाँ–दिन प्रतिदिन श्रद्धा बढ़ती जाये और उत्तरोत्तर प्रगति होती जाये, तो समझना कि बड़े संत प्रसन्न हैं। जिसने स्वभाव छोड़े हों या छोड़ रहा हो या छोड़ने लग पड़ा हो उन सभी पर बड़े संत की (कृपा) दृष्टि रहा करती है।
एक तो जो सौ जन्म के बाद एकांतिक होने वाला हो वह इसी जन्म में ही एकांतिक हो जाये और इसी जन्म में कोई एकांतिक हो सकता हो पर उसे यदि घटिया संग मिल जाये तो सौ जन्म भी लेने पड़ें...... यूं संगत में फर्क है।

प्र. 2-178

✷ जिसने उत्तम पुरुष का सेवन किया हो और उसमें कसर रह गई हो और संत ने यदि शरीर छोड़ दिया व फिर ऐसा जोग नहीं रहा, तो भी (संत) उसकी कैसे भी सहायता करते हैं, क्योंकि वे तो समर्थ हैं, सो रक्षा करेंगे – जैसे व्यासजी ने कीड़े की रक्षा करी यूं करते हैं।

प्र. 2-183

✷ भगवान कैसे हैं? तो जो जीव उनके सम्मुख चल पड़ता है, उसके लिये तो सारे ब्रह्मांड को भी बदल देंगे। प्रहलाद् का देह ही जीव जैसा कर दिया न?

प्र. 2-185

✷ जिसे सत्संग मिला है, उसे दुःख रह नहीं सकता। दुःख रहता है, इतनी सत्संग करने में कसर है......

प्र. 2-186

✷ छोटे गांव में लाख रुपये की हुंडी लिखने वाला नहीं मिलेगा, वह तो शहर में मिलेगा और करोड़ रुपये की हुंडी लिखने वाला तो किसी बहुत बड़े शहर में मिले। इस तरह अति उत्तम पुरुष का संग अधिक जगह पर नहीं मिलता, पर वह मिले बिना अति उत्तम ज्ञान भी होगा नहीं। बड़े (संत) की दृष्टि में इस लोक का कारोबार तो चीटियों और पशु-पक्षी के जैसा है।

प्र. 2-188

✷ भगवान की मूर्ति, भगवान के साधु और साधु की आज्ञा—इन तीन बातों में जो लाभ है, ऐसा अन्य कोई बात में नहीं है।
ज्ञान, वैराग्य, धर्म आदि साधन तो कुदाली, फावड़ा और हँसिया के ठिकाने हैं—यूं बड़ों की समझ है और हमने तो एक भगवान ही रखे हैं और कुछ नहीं रखा है।

प्र. 2-190

✷ गुण में दोष रहे हैं। वह क्या? तो स्वयं त्याग रखता हो, पर अन्य में दोष देखे व स्वयं नहीं सोता हो, पर सोने वाले में अवगुण देखे—ऐसी कई बाते हैं; वे अवश्य समझनी चाहिए।

प्र. 2-191

✷ स्वभाव का बल सबसे अधिक है। क्योंकि—विषय के संकल्प उठें, वह तो 'वासना' कही जाये; पर भगवान की स्मृति करते समय जो संकल्प उठें, वह 'स्वभाव' कहा जाये।

प्र. 2-192

प्रकरण-3

- ✷ मुक्तानंदस्वामी और ब्रह्मानंदस्वामी अभ्यास कर रहे थे, उनके पास महाराज जाकर बैठे। फिर मुक्तानंदस्वामी को पूछा कि देश में सत्संग कैसा हुआ है? तब मुक्तानंदस्वामी ने कहा कि सत्संग तो बहुत हुआ है। तब महाराज बोले कि आप किस प्रकार के सत्संगी हुए हो ? तब मुक्तानंदस्वामी ने कहा कि हम तो खरे सत्संगी हुए हैं। तब महाराज बोले कि आप तो अभी गुणबुद्धि वाले सत्संगी हुए हो ! खरे सत्संगी हुए हो तो बताइये कि हम कहां थे और कहां से आए हैं? तब मुक्तानंदस्वामी ने कहा कि नहीं महाराज, ऐसे सत्संगी तो हम नहीं हुए हैं। तब महाराज बोले कि हमारे खरे सत्संगी तो गोवरधनभाई आदि हैं, जो कि हमें तीनों अवस्था में निरंतर देखते हैं। फिर मुक्तानंदस्वामी बोले कि हे महाराज ! ऐसा सत्संगी कैसे बन पाएं ? तब महाराज बोले कि ऐसा सत्संगी तो तब बना जाए, जब मायिकभाव टाल कर, स्वयं की आत्मा को अक्षररूप मान कर, मेरी मूर्ति का अखंड चिंतन करो तब ऐसे सत्संगी बन पाओगे...

प्रकरण : 3-9

- ✷ एक दिन स्वरूपानंदस्वामी ने महाराज से पूछा कि हे महाराज ! सत्संगी का कैसा कल्याण होता है ? तब महाराज बोले कि जैसा कल्याण बड़े-बड़े अवतारों का होता है, वैसा कल्याण सत्संगी का होता है ! तब स्वरूपानंदस्वामी बोले कि गुरु साहेब, तब तो बहुत ही बड़ा कल्याण होता है।

प्र. 3-10

- ✷ एक हरिभक्त ने चार-पांच वचनामृत पढ़े। वे वचनामृत—प्रथम का तेईसवाँ एवं मध्य का तीसवाँ व पैंतालीसवाँ व अमदावाद का दूसरा और तीसरा। तब स्वामी बैठे होकर बोले कि यह वचनामृत तो मानो अभी तक सुने ही नहीं थे। यह कह कर बोले कि इन्हें दोबारा पढ़ो। तब दोबारा पढ़े गए। तब स्वामी बोले कि इन वचनामृतों को सुन कर ऐसा लगा कि कोटि कल्प तक ऐसा किए बिना छुटकारा नहीं है। यह, हमें तो किए बिना छुटकारा नहीं है, परंतु आचार्य हो या भगवान का लड़का हो या ईश्वर हो या चाहे छोटे-बड़े भगवान ही क्यों ना हों, लेकिन ऐसा किए बिना छुटकारा नहीं है...

प्र. 3-13

✷ जिसे महाराज व यह साधु जैसे हैं वैसे पहचाने जायें, उसे समझना-करना कुछ बाकी रहता ही नहीं है। तब पूछा कि–महाराज व यह साधु जिसने पहचाने हो उसकी कैसी समझदारी होती है? तब स्वामी ने उत्तर दिया– 'यो वेत्ति युगपत्सर्वं प्रत्यक्षेण सदा स्वत!' यह श्रुति बोलकर कहा कि ऐसी समझदारी हो तब भगवान व बड़े संत को पहचाना कहा जाता है। पर तब फिर किसी ने पूछा–ऐसी समझ हो तो गलत आचरण कैसे हो? तब स्वामी बोले कि जिसकी ऐसी समझ हो उसे तो गलत संकल्प भी नहीं उठ पाये, तो गलत आचरण तो करेगा ही कैसे? जो जितना गलत आचरण करता है, उसे उतना अज्ञान है व जितना अज्ञान है, उतना कुसंग हो रहा है।

प्र. 3-15

✷ श्रीजी महाराज ने अनंत प्रकार की बातें जीव के मोक्ष के लिए प्रर्वताई हैं; परंतु उनमें से चार बातें जीव का जीवन हैं।वे क्या? तो, एक तो महाराज की उपासना, दूसरी महाराज की आज्ञा, तीसरी एकांतिक साधु के साथ प्रीति और चौथी भगवदी के साथ सुहृद्भाव। ये चार बातें तो जीव का जीवन है, इन्हें तो छोड़ना ही नहीं। यदि अशुभ देश, काल, शास्त्र, मंत्र, दीक्षा व देवता इन आठ अशुभ का जोग हो जाए, तो महाराज व दूसरे अवतार आदि के प्रति समभाव करा डाले और आज्ञा में लापरवाही करा दे व बड़े साधु एवं सत्संग में गड़बड़ किया करता हो उन दोनों को एक सरीखा बताए और भगवदी में दोष दिखा दे।ये आठ तो असत्पुरुष में रहे हैं। सो, जिसे जीव का जीवन जीवंत रखना हो, उसे तो संत को पहचान कर जीव जोड़ना चाहिए। तब एक हरिभक्त ने हाथ जोड़ कर कहा कि मुझे तो बहुत बंधन हुआ है; मैं क्या करूं ? तब स्वामी बोले कि मैं तो तुझे बहुत ही सुखी कर दूँ, परंतु वैसा तुम से किया नहीं जाएगा और जैसा मैं कहूँ वैसा यदि करोगे, तो वहां से विमुख कर दिए जाओगे, पर तभी यह बात बन पाएगी, उसके बिना तो हो ही नहीं पाएगा। तब फिर पूछा कि आप कहो वैसा करे उसे विमुख कैसे कहा जाए? तब स्वामी बोले कि ये दो जने जैसा मैं कहता हूँ वैसा करते हैं, तो वहां के इन्हें विमुख मानते हैं। परंतु यदि महाराज व बड़े साधु राजी हैं, तो सभी राजी हो ही चुके हैं। इतनी बात करके मंदिर में पधारे !

प्र. 3-17

✷ एक बड़े हरिभक्त ने प्रश्न पूछा–'स्वामी ! हृदय में ठंडक कैसे हो? तब स्वामी बोले कि जैसे भगवान की ओर देखते रहते हैं, वैसे बड़े संत की ओर देखते रहेंगे तब भीतर में ठंडक होगी। जैसे गाय का बछड़ा गाय के सारे शरीर में इधर उधर कहीं भी मुँह लगाता रहे, पर उसे दूध का सुख आयेगा नहीं। वह तो जब गाय के आंचल से मुँह लगायेगा, तब ही दूध का सुख आयेगा। वैसे ही सारा सत्संग

महाराज का शरीर है, पर बड़े एकांतिक संत द्वारा तो महाराज अखंड रहे हैं। उनसे जुड़ जायें, तो महाराज का सुख आता है—जैसे गाय के आंचल से दूध आता है।

प्र. 3-20

✷ स्वामी ने एक दिन शिवलाल सेठ को गाड़ी में साथ बैठा कर कहा कि तू समझता है कि मैंने गढडा में मूर्ति पधराई और भावनगर में रघुवीरजी महाराज पधराए, यह बहुत बड़ा काम कर लिया; परंतु तेरे जीव को देखता हूँ, तो वहां तो आधा ही सत्संग रहा है। तब शिवलाल हाथ जोड़ कर बोले कि—हां, महाराज। फिर स्वामी बोले कि ऐसे साधु को छोड़ कर सुख की इच्छा करना, वह तो जैसे एक दिन गाय का बछड़ा खूंटी से छूट कर गौशाला में गया और समझे कि दूध का सुख ले लूं। वहां तो पड्ड़े थे, तो मुँह लगाए कि लातें पड़े। वह लातें खाते-खाते मुँह तो सूज गया और दूध का सुख भी नहीं मिला; इतना ही नहीं, पर बछड़े की मां आई, तब उससे दूध पी नहीं पाया। ठीक उसी प्रकार ऐसे साधु को छोड़ कर और कहीं सुख लेने जाना, वह तो लातें खाने जैसी बात है। क्योंकि वे आज्ञा—उपासना में भंग डालेंगे और तब ऐसे साधु के पास नहीं बैठ पाओगे, जैसे गाय का बछड़ा गाय (अपनी मां) के पास नहीं जा पाया। यह कह कर स्वामी बोले कि ऐसे दो महीने तक बातें करूंगा, तब जैसे पहले तुम्हारा जी भगवान में जुड़ा हुआ था, वैसा जुड़ पाएगा, इतना तुम में स्थूलभाव आ गया है और यह बातें तो भगवान में जुड़ जाने की हैं।

प्र. 3-21

✷ स्वामी ने एक दिन शिवलाल सेठ को कहा कि आज कहां गए थे? तब शिवलाल सेठ हाथ जोड़ कर बोले कि आज तो शहर गया था। फिर कहा कि एक रसोई की सेवा ले आया हूँ। तब स्वामी ने पूछा कि रसोई कैसी? तब शिवलाल सेठ ने कहा कि एक जगह से सोना खरीद कर दूसरी जगह पर बेचा था, उसमें डेढ़ सौ रुपये की कमाई हुई—उसकी रसोई। तब स्वामी बोले कि वह तो ठीक, परंतु सोना खरीदने का विचार उठा, पर किसी दिन सौ करोड़ मन कूड़ा खरीद कर कमाई कर लें ऐसा संकल्प उठता है क्या? तब शिवलाल बोले कि नहीं महाराज ! तब स्वामी बोले कि बड़े साधु की दृष्टि में तो महाराज की मूर्ति के सिवा प्रकृति पुरुष तक सारा कूड़ा ही है; अन्य किसी चीज़ में माल नहीं दिखाई पड़ता। सो, तुमने इतनी देर ऐसे साधु के दर्शन व बातें गवाँ कर भला क्या कमाई करी? यूं कह कर बुद्धि का आडंबर टाल दिया।

प्र. 3-22

✷ ....बड़े पुरुष की कृपा दृष्टि हम पर कब हो? यदि धर्म में दृढ़ हो व आत्मा परमात्मा का अति दृढ़ ज्ञान हो तथा पंचविषय में अतिशय दृढ़ वैराग्य हो व पुरुषोत्तम भगवान की माहात्म्य ज्ञान सहित अनन्य भक्ति हो उसी पर बड़े संत की कृपा दृष्टि होती है, परंतु देहाभिमानी पर कृपा दृष्टि नहीं होती और

ऐसों पर जो कृपा दृष्टि दिखाई जैसी पड़ती है, वह आखिरकार रहेगी ही नहीं उसमें कोई शंका नहीं है।

प्र. 3-25

✷ सत्संग जैसा है वैसा तो जाना ही नहीं जाये। अगर कोई जान भी ले, तो सत्संग कर नहीं पायेगा और कोई करे भी, तो जैसा सत्संग है वैसा करा नहीं जाये और यदि होवे, तो उसे संभालना कठिन पड़े–या तो वह बहक जाये या पागल हो जाये। ऐसा सत्संग कौन संभाल सकता है? तो जिसे महाराज व इस बड़े संत के प्रति माहात्म्य ज्ञान सहित प्रीति हो–वह संभाल सकता है, पर और कोई नहीं संभाल सकता...

प्र. 3-26

✷ जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब देखकर मछली खुश होती है व सोचती है कि यह भी हमारे जैसी ही कोई मछली है। पर जैसा चन्द्रमा है, उसका मंडल है व जैसा उसका तेज है, जैसा उसका ऐश्वर्य व सामर्थ्य है, उसे मछली जान नहीं सकती। उसी प्रकार समुद्र में कोई बड़ा जहाज चला जा रहा हो, उसे देखकर बड़ा मगरमच्छ यही सोचता है कि यह भी हमारे जैसा कोई मगरमच्छ ही चला जा रहा है, पर जैसा वह जहाज है उससे समुद्र तैर सकते हैं और करोड़ों रुपये का माल ले जा सकते हैं–ला सकते हैं उसे वो जान नहीं सकता। यह तो उदाहरण है; कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे महाराज व उनके संत हैं व जैसे उनका स्वरूप, गुण, स्वभाव, ऐश्वर्य, सामर्थ्य है उसे जानते नहीं हैं, जैसे मछली चन्द्र को, मगरमच्छ जहाज को अपने समान ही समझते हैं। यूं लोग महाराज व संत को अपने समान मनुष्य जैसा ही समझते हैं, पर जैसे वे हैं वैसे नहीं पहचानते..... कि अनंत कोटि जीवों को ब्रह्मरूप करके अक्षरधाम ले जायें ऐसे समर्थ हैं। यही अज्ञान है।

प्र. 3-29

✷ भजन करते-करते क्रिया करें, तो अंतर में ठंडक रहेगी। अंतर में ठंडक देखकर बड़े संत प्रसन्न होते हैं और जिस पर बड़े संत प्रसन्न हों उसका जीव सुखी हो जाता है।.... भगवान निरंतर कैसे प्रसन्न रहें? तो स्वामी बोले कि–जिसे भगवान को निरंतर राजी रखने हों, उसे भगवान की आज्ञा का कभी भंग नहीं करना चाहिये और हमें जो भगवान का स्वरूप मिला है इसके सिवा और कहीं सुख ढूंढने की इच्छा नहीं रखना व भगवान के सच्चे साधु का संग रखना। तो उस पर भगवान व साधु निरंतर प्रसन्न रहेंगे, इसमें कोई शंका नहीं है।

प्र. 3-32

✷ सत्संग में यूं बात होती है कि जीव ब्रह्मरूप हो जाता है। तब किसी ने पूछा कि यूं बात तो होती है, पर जीव ब्रह्मरूप क्यों नहीं होता? फिर स्वामी बोले कि

सत्पुरुष (संत) के साथ प्रीति से जी जोड़ नहीं दिया और यदि जी जोड़ भी दिया हो, पर उनका विश्वास नहीं आता होगा। तब फिर पूछा कि यदि जी जोड़ा हो, तो उसका विश्वास भला क्यों ना आए? तब स्वामी बोले कि यह जला भक्त ने मेरे साथ जी खूब जोड़ा है, परंतु इसे मेरा विश्वास नहीं आता। यह कह कर फिर बोले कि विश्वास भी हो, पर संत के पास खुले (निष्कपट) नहीं रह पाते होंगे। यदि संत के पास खुले रहें, तो जीव ब्रह्मरूप हुए बिना रहेगा नहीं; यह सिद्धांतिक बात है।

प्र. 3-33

✷ एक दिन स्वामी छोटे-छोटे साधु, पार्षद व ब्रह्मचारी की ओर देख कर बोले कि–

देश देशांतर बहुत फिरे, मनुष्य का बहुत सुकाल;
जिसे देख कर छाती ठरे, ऐसों का पड़ा दुकाल।

यह कह कर बोले कि जैसे महाराज को देख कर समाधि हो जाती और जीव सुखी हो जाता है, वैसे निरंजनानंदस्वामी के दर्शन से समाधि जैसा सुख भीतर में आता है; पर ऐसों का दुकाल है। तब पूछा कि जिसके दर्शन से छाती ठंडी हो, ऐसा उसमें कौन-सा गुण होता है कि उसे देख कर छाती में ठंडक हो जाए ? तब स्वामी बोले कि जिसे देखने से वृत्ति मुड़ जाए, उससे छाती में ठंडक होती है और जिसे देखने से वृत्ति चलायमान हो जाए उसे देख कर छाती में ठंडक नहीं होती। तब पूछा कि जिसे देख कर संत की छाती ठंडी हो, ऐसे गुण कैसे आएं ? फिर स्वामी बोले कि ऐसे गुण तो आएं ही नहीं, चाहे कितना भी साथ में रहें, सेवा करें व कहें वैसा करा करें तब भी बड़े संत के गुण तो आएं ही नहीं। तब फिर हाथ जोड़ कर पूछा कि हे महाराज ! क्या उपाय किया जाए जिससे कि ऐसे गुण आएं ? वचनामृत में तो कई जगह पर कहा है कि सत्पुरुष के गुण मुमुक्षु में आते हैं। तब स्वामी बोले कि सत्पुरुष के गुण तो तब आते हैं जब ऐसे संत को निर्दोष समझें व सर्वज्ञ जानें व उनके साथ किसी भी प्रकार का अंतराय रखे नहीं, तब सत्पुरुष के गुण मुमुक्षु में आते हैं, वर्ना तो आते ही नहीं हैं।

प्र. 3-34

✷ महाराज यूं कहते थे कि दूसरे तो अभागे, परंतु यादव तो निरंतर अभागे। यह कह कर बोले कि जैसे महाराज हैं व जैसे ये साधु हैं, उन्हें जैसे हैं वैसे नहीं पहचाने गए, तो हम निरंतर अभागे हैं; क्योंकि मूसलाधार बारिश होते हुए भी दुकाल पड़ा और गंगास्नान किया व सिर गीला नहीं किया ! और यूं समझे बिना इस सत्संग में रहे हैं वे तो जैसे बच्चे-बाछड़े रहते हैं, वैसे रहे हैं; परंतु जैसे हैं वैसा उन्हें पहचान नहीं सकते और सत्संग की महिमा तो बहुत बड़ी है; महाराज कहते कि यह सत्संग तो ब्रह्मरूप और महाविष्णुरूप है...

प्र. 3-35

✷ एक दिन स्वामी सोये हुए थे, वे जग कर बैठे और प्रश्न पूछा कि सबसे अच्छा क्या है और सबसे बुरा क्या है ? तब कोई बोला नहीं, सो स्वामी बोले कि भगवान और इस साधु का जो संबंध हुआ है वह सबसे अच्छा है, इससे बढ़ कर और कुछ अच्छा नहीं है व इससे अधिक और कुछ अच्छा समझना भी नहीं है। सबसे बुरा क्या है ? तो इस साधु के प्रति मनुष्यभाव आता है, इससे अधिक और कुछ बुरा नहीं है और यह मनुष्यभाव लोक, भोग, देह व चौथा पक्षपात के कारण आता है। इसमें 'पक्षपात' से जीव की जो अधोगति होती है, वैसी तो पंचविषय से भी नहीं होती है। 'पक्षपात' के कारण ही गोपाळानंदस्वामी को पत्थर मारे और झोली में अंगारे डाले; उन अंगारों को निकालने वाला यहां बैठा है। यह कह कर फिर बोले कि ऐसे तोहफे तो हमें बहुत मिले हैं, जो मुँह से तो कहे भी नहीं जाएं। ऐसे उल्टे पक्ष के कारण बड़े साधु का अवगुण लेकर तो भूत योनि को पाए हैं और अभी भी कोई ऐसा होगा, वह भी पाएगा व उस पाप के कारण नरक खाने, पेशाब पीने जैसे दुःखों को भोगता है, पर उसे सुख तो कहीं नहीं मिलेगा।

प्र. 3-36

✷ ...अविद्या का जन्म ही यहां हुआ है और दूसरी जगह पर तो उसकी ससुराल है। सो, जहां-वहां जाकर अविद्या को अपना रूप खुल्ला करना है और हमें हमारा स्वरूप खुल्ला करना है। दूसरों के मन में तो ऐसा है कि स्वामी नहीं होंगे तब जूनागढ़ का तो सब बिखर जाएगा, परंतु महाराज की व बड़े साधु की कृपा दृष्टि है, सो सर्वोपरि करना है। बिजली को चमकती देख कर गधी टांगे पटकाए, पर इससे बिजली का चमकना रुकेगा नहीं बल्कि बार-बार पटकने से उसकी टांगें टूट जाएंगी। ठीक उसी प्रकार अविद्या के कारण जीव अपना ही बुरा करेगा, पर महाराज व बड़े साधु का कर्तव्य कभी भी मिथ्या नहीं ही होगा।

प्र. 3-39

✷ आज तो सत्संग में भगवान प्रगट विराजमान हैं, वर्ना बीस-बीस साल के युवान संसार छोड़कर कैसे चले आयें? काम, क्रोधादि तो इतने बलवान हैं कि शिव, ब्रह्मा आदि जैसों की भी लाज ली है....

प्र. 3-40

✷ ...जितना साधु में जीव बंधा है उतना ही सत्संग है और जितना जीव बंधा नहीं है उतना कुसंग है। तब पूछा कि इस तरह साधु में जीव बंधा हुआ हो, तब भी सत्संग से कैसे निकल जाते हैं? फिर स्वामी बोले कि ठीक तरह से साधु में जीव जोड़ा नहीं होगा और यदि जोड़ा हो तो वह सत्संग में से जा नहीं सकता...

प्र. 3-42

✷ 'सत्संग' कब हो पाए? तो, बद्रिकाश्रम व श्वेतद्वीप जैसा पवित्र स्थानक हो और मुक्तानंदस्वामी, गोपाळानंदस्वामी व स्वरूपानंदस्वामी जैसों का निरंतर

संग हो व ब्रह्माजी के कल्प पर्यंत की आयु हो, तब तक ज्ञान गोष्ठी किया करें तब 'सत्संग' होता है; पर इसके बिना तो 'सत्संग' होता नहीं है। ऐसा कह कर फिर बोले कि–

गुरु ही कहां किए हैं ? गुरु किए हों तो उनके गुण आने चाहिएं ना ? ...जिस प्रकार भगवान ने गीता का ज्ञान देकर अर्जुन को नारायण स्वरूप बनाया, वैसे तुम किसी को धाए हो? और जो सच में ऐसा धाया हो वह कभी बैठ ही ना जाए। लोभ, काम, रस, स्वाद, स्नेह और मान आदि में फंस जाते हैं, तब तक गुरु किए ही नहीं हैं और जिसने गुरु किए हुए हों वह तो बैठ जाए ही नहीं।

प्र. 3-45

✷ .... महाराज बोले..... पुरुष का मन स्त्री के गुह्य अंग में व स्त्री का मन पुरुष के गुह्य अंग में रहता है। यूं सभी के मन दिखा दिये।

प्र. 3-47

✷ .....स्वामी बोले–साधु के पास आता ही कौन है? जो कोई साधु के पास आये, उसे तो किसी बात की कसर रहे ही नहीं। .....ऐसा सत्संग मिला है, परंतु समागम के बिना किसी को ख्याल नहीं पड़ता व जब तक सत्पुरुष का संग नहीं करा, तब तक कुछ नहीं हुआ है.....

प्र. 3-48

✷ फिलहाल मुमुक्षुओं ने जन्म लिया है, तो उनके लिए महाराज को धरती पर आना पड़े, सो आयु ना होते हुए भी महाराज ने मुझे रखा है और हमें भी इन मुमुक्षुओं को महाराज का सुख देना पड़ता है व मेरी आयु तो अट्ठावन वर्ष से अधिक नहीं थी, ऐसा हमारी जन्मपत्री में लिखा हुआ था। यह देह जो रहा है, वह तो सोरठ देश के इन हरिभक्तों पर महाराज को खूब प्यार, सो उन्हें सुख देने के लिए महाराज ने मुझे रखा है। वह क्यों? तो उस समय महाराज अपना सुख उन्हें दे नहीं पाए थे, उन्हें अपना सुख देने के लिए, जो उनका सर्वस्व था वह साधु सत्संगी के लिए कृष्णार्पण कर रखा है.....ऐसे साधु में रहकर भगवान दर्शन देते हैं, बातें करते हैं, मिलते हैं व हमारी ओर देखते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार से सुख देते हैं।

प्र. 3-53

✷ .....जैसे सूर्य की किरणों से रात्रि का नाश हो जाता है, वैसे ही सत्पुरुष की दृष्टि से तो कहीं भी अज्ञान रहे ही नहीं...

.... बाद में ऐसा जोग मिलना बहुत दुर्लभ है, इसलिए समागम तो कर लेना।

प्र. 3-54

✷ ....एक दिन महाराज को चार प्रश्न पूछे–उसमें एक तो ध्यान करना, दूसरा आत्मारूप वर्तना, तीसरा बीमारों की सेवा करना और चौथा भगवान की बातें करना–इन चारों में से कौन सा अधिक श्रेष्ठ है वह बताओ? तब महाराज ने

बताया कि भगवान की बातें करना सबसे अधिक है। बस, उस दिन से बातें करनी शुरू की हैं। रात-दिन नागा नहीं पड़ने दिया, जिससे जीव ब्रह्मरूप हो जाता है।

प्र. 3-56

✷ .... सत्पुरुष का संग तो मन, कर्म, वचन से ही करना चाहिए। मन, कर्म, वचन से संग कैसे करना? ....कर्म यानि देह से तो सत्पुरुष जैसा कहे वैसे करना व वचन से सत्पुरुष में अनंत गुण रहे हैं वे गाया करना व मन में बड़े साधु के प्रति नास्तिक भाव आने नहीं देना। तब जानना कि बड़े संत का मन, कर्म, वचन से संग करा है....

प्र. 3-60

✷ .... जैसे-जैसे भगवान का ज्ञान होता जाता है वैसे-वैसे भगवान की अधिक महिमा समझ में आती है.......

प्र. 3-61

✷ पहले तो मुमुक्षु भगवान को खोजते थे, पर अब तो भगवान मुमुक्षु को खोजते हैं....

प्र. 3-62

✷ ....ऐसे साधु से अलग होने पर नरक में पड़ने जैसा दुःख होना चाहिए। ऐसा दुःख नहीं होता, तब तक सत्पुरुष में जीव बँधा ही कहां है? और जब तक सत्पुरुष में जीव बँधा नहीं है, तब तक हम लोक, भोग और देह रूप हो जाते हैं। यूँ कह कर कहा कि—हमें तो हजारों क्रियाएँ करनी पड़ती हैं, तब भी पलकें झपकें इतनी पल भी भगवान भूलें तो सिर फट जाये।

तब किसी ने पूछा कि हजारों क्रिया करवाओ व तैलधारा वृत्ति भगवान में अखंड रखो—वह कैसे? तब स्वामी बोले कि—तुम तुम्हारी देह को भूल जाते हो? .....अगर तुम तुम्हारी देह को भूलो तो मैं महाराज की मूर्ति को भुलूँ। जैसे मछली जल में चलती फिरती है, क्रीड़ा करती है, वैसे ही हम बोलते हैं, चलते हैं, क्रिया करते हैं; पर भगवान को भूलकर तो कोई भी क्रिया करते ही नहीं हैं। जो यह नहीं मानता, उसे तो बड़ों में दोष नज़र आता है कि खुद परेशान होते हैं और दूसरों को भी परेशान करते हैं। ऐसे दोष देखने वाला कोटि कल्प तक छुटकारा पाता नहीं है, यह सिद्धांतिक बात है।

प्र. 3-65

✷ इस जीव को मक्खी में से सूर्य बनाना है, वह किए बिना तो होगा ही नहीं। तब किसी ने पूछा कि मक्खी में से सूर्य कैसे बनेगा? फिर स्वामी बोले कि यह सूर्य किसी काल में मक्खी में से हुआ है; वो पुरुषोत्तम की उपासना के बल से हुआ है और इन पुरुषोत्तम की उपासना से ही तो ईश्वर कोटि में व पुरुष कोटि में एवं ब्रह्मकोटि में प्रवेश मिलता है और इस उपासना व महिमा

द्वारा ही अपने आपको परिपूर्ण व कृतार्थ माना जाता है, वर्ना तो अपने आप में अपूर्णपन व कल्पना ये दो रहते हैं...

प्र. 3-66

✷ ....चाहे कैसा ही बड़ा शास्त्री हो, पुराणी हो, पर इस प्रत्यक्ष भगवान व इस प्रत्यक्ष संत, उनकी पहचान नहीं हुई वे खीजड़े जैसे हैं। उनकी संगत से ठंडक या सुख प्राप्त नहीं ही होगा।
विद्या भी चाहे अधिक ना सीखा हो, उम्र भी छोटी हो, कुल भी ऊँचा न हो, पर इस प्रत्यक्ष भगवान की निष्ठा हुई हो और इस साधु की पहचान हुई हो, वह तो आम के वृक्ष जैसा है। उनके संग ठंडक प्राप्त कर पायेंगे व सुखी हो जायेंगे। .....इसलिए भगवान के भक्त को पहचान कर उसका संग करना, जिससे कि आख़िरी जन्म हो जाये और ऐसे न मिले तो दूसरे तो अनंत जन्म उत्पन्न करवायें ऐसे हैं।

प्र. 3-68

✷ ....आज तो हमें अलभ्य लाभ मिला है ऐसा मानना। मरने के बाद जिन्हें पाना था, वह तो जीतेजी ही मिले हैं, पर मरकर पाना है—ऐसा नहीं है। महाराज ने कहा है कि 'देह धरने का निमित्त तो नहीं है, पर कोई न कोई वजह निकाल कर इन संतों के बीच ही जन्म लेना है, ऐसी ही इच्छा मैं रखता हूँ।' यूँ कह कर हमें सिखाया और ऐसा देह तो हमें मिला है, सो समागम कर लेना।

प्र. 3-69

✷ ....अब तो सब काम हो चुका है; क्योंकि सुख शैय्या पर बैठ कर भगवान भज सकें ऐसा कर दिया है और अब तो कुरेद कर दुःख खड़े करो तो है। जैसे एक बंदर का घाव देखकर दूसरे बंदर कुरेद कर दुःख खड़े करते हैं, वैसे ही तुम भी इकट्ठे होकर नोंच-नोंच कर दुःख खड़े करो तो है।
यूं कह कर बोले कि देखो न सर्वोपरि महाराज व सर्वोपरि यह साधु व सर्वोपरि यह स्थान; अगर यहाँ दुःख रहेगा, तो फिर कौन-सी जगह दुःख टलेगा? नहीं ही टलेगा। इसलिए जिसे सुखी होना हो, उसे तो इसी के बराबर कोई और स्थान नहीं है। ऐसा कह कर बोले कि जब-जब इस रास्ते से गुजरते हैं, तब भगवान याद आ जाते हैं; क्योंकि बड़े-बड़े साधु व महाराज इस रास्ते से बहुत चले हैं। तब काशीराम ने पूछा कि जिसे महाराज के दर्शन हुए हों, उसे तो महाराज की स्मृति हो, पर जिसने महाराज के दर्शन ही न किए हों तो उसे क्या याद आए? तब स्वामी बोले कि हमें कहाँ परोक्ष हैं? अपने यहाँ तो संत द्वारा प्रत्यक्ष हैं; वे दर्शन देते हैं, बातें करते हैं—यूं बहुत प्रकार से सुख देते हैं। पर जब तक अज्ञान है, तब तक समझ में नहीं आयेगा, यह निश्चित बात है।

प्र. 3-70

✷ स्वामी ने कल्याणभाई को बात करी कि अब के सत्संग की महिमा तो मुख से कही नहीं जाए और यदि कहें तो कोई मान भी नहीं पाएगा। तब कल्याणभाई ने कहा कि सत्संग की महिमा तो बहुत है। तब स्वामी बोले कि पहले बड़े-बड़े जो अवतार हो चुके हैं, उससे अधिक तो इन सत्संगियों के बच्चों में करोड़-करोड़ गुणा अधिक दैवत्व दिखाई पड़ता है ! तो फिर बड़े-बड़े हरिभक्त व बड़े-बड़े साधु और महाराज की महिमा तो भला कही ही कैसे जाए?

महाराज ने वचनामृत में कहा है कि मेरी महिमा के पार को मैं ही पा नहीं पाता, तो दूसरे तो भला पाएंगे ही कैसे? यूं कह कर बोले कि– **मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात्।।** यह श्लोक बोल कर कहा कि बल तो खूब दिखाया, पर कल्याण तो एक अपनी माता का ही किया है ! इससे लगता है कि यह श्लोक किसी और का लगता है, परंतु उनके बल का नहीं है।

फिर बोले कि आज तो सत्संग की औरतें भी हजारों जीवों का कल्याण करेंगी, तो दूसरों की तो बात ही क्या कहनी ? इस प्रकार बहुत बातें करके नहाने के लिए उठे।

प्र. 3-72

✷ स्वामी ने एक भक्त की ओर देख कर बात करी कि भगवान और बड़े साधु यदि उदास हो जाएं, तो यूं समझना कि अब मुमुक्षु के कर्म फूटे। यह कह कर बोले कि हम तो साथ में बहुत रहे और बहुत समागम किया व अब तो हालात बदलें और साथ में रह पाएं या ना भी रह पाएं, परंतु अब तो अक्षरधाम में रह पाएं, ऐसे स्वभाव बनाने सीखो। तो फिर, एक पल भी अलग नहीं हैं, यूँ समझना। यह कह कर फिर बोले कि चाहे अक्षरधाम का मुक्त हो और स्वाधीन होकर आया हो व स्वेच्छा से शरीर छोड़ सके ऐसा हो, परंतु उसे यदि सत्पुरुष का संग नहीं हो, तो वह जड़ संज्ञा को पा जाता है और उसे यदि सत्पुरुष का संग हो जाए तो पूर्व जन्म में प्राप्त ज्ञान प्रगट हो जाता है। वर्ना तो जैसे बनिया परदेश जाता है; फिर वहां औरतें रख कर बस जाता है, ठीक उसी प्रकार अक्षरधाम का मुक्त ही क्यों ना हो? तो भी इस लोक में बंध ही जाता है। विज्ञानदासजी को तो अक्षरधाम की समाधि तक होती थी और महाराज को जागृत, सुषुप्ति, स्वप्न–इन तीनों अवस्थाओं में देखते थे, तब भी तीन शादियां करीं, पर निकल नहीं पाए। फिर जब गोपाळानंदस्वामी ने कहा तब निकल पाए, ऐसा यह लोक है। इसलिए तो महाराज अक्षरधाम व अनंत मुक्तों के साथ पृथ्वी पर पधारे हैं। सो समागम कर लेना चाहिए, जिससे कि महाराज की सेवा में रहा जा सके; वर्ना तो घरोघर लुभावनी औरतें हैं, उनकी सेवा में रहना पड़ेगा...

प्र. 3-73

प्रकरण-4

✷ ...भगवान की महिमा की ओर दृष्टि करते हैं, तो बहुत ही बड़ा लाभ हुआ है और साधु के मार्ग की ओर देखते हैं तो खोट भी बहुत है। फिर 'वज्र की कील' का वचनामृत पढ़वाते हुए बात करी कि दो प्रकार की कील समझनी। एक तो—**'त्रिभुवनविभवहेतवेप्यकुंठ.......'** यानि भगवान की 'अखंड स्मृति' किया करें और दूसरा प्रकार तो 'निष्ठा' है। स्मृति तो हो पाए या ना हो पाए, परंतु निष्ठा डिगनी नहीं चाहिए। निष्ठा से **त्रिभुवनविभवहेतवेप्यकुंठ** की स्थिति कईयों की हुई है; सो वही ठीक है और हम में से बहुतों की तो निष्ठा की स्थिति की कील है।

प्र. 4-1

✷ महाराज ने हमें वरदान दिया है कि हजार जन्म में जो काम होने वाला होगा, वह तुम्हारा काम एक जन्म में करके दूंगा।

प्र. 4-3

✷ पूर्व के संस्कार से जो बीज रूप वासना है, वह तो बड़ों को मन सौंपकर राजी करें, तब बड़ों के अनुग्रह से टलती है; पर दूसरे किसी उपाय से टलती नहीं है।

प्र. 4-5

✷ वैसे अपने में त्याग से शोभा बहुत लगती है। परंतु, उसमें भी विघ्न है व भक्ति से भी देखने में बहुत शोभा लगती है, परंतु उसमें भी विघ्न है और आत्मनिष्ठा में भी विघ्न है। परंतु, जिसने बड़े साधु को मन सौंप दिया हो, उसे विघ्न नहीं आता। इस बारे कईयों को जो विघ्न आए थे, उनके नाम बताए।

प्र. 4-6

✷ अभी ख्याल नहीं पड़ता, पर हमें भगवान मिले हैं सो कृतार्थ (धन्य) हुए हैं।

प्र. 4-9

✷ गीता में कहा है कि **'यश्च मूढतमो लोके'** इस तरह भगवान को यथार्थ जाने उसे और कुछ जानना बाकी रहता नहीं है; सभी गुण उसमें आएंगे, जैसे कोई अमृत पीए, तो उसमें सारी औषधि आ ही गई है और दूसरे गुण हम सीखने जाते हैं, किन्तु उसमें (कभी) 'त्याग' प्रधान (मुख्य) हो जाता है, 'आत्मा' प्रधान हो जाती है 'धर्म' प्रधान हो जाता है—वह ठीक नहीं है। ये तो

बराती हैं और 'दूल्हा' तो भगवान हैं। सो, भगवान को जो पुरुषोत्तम समझता है, उसे और कुछ समझना बाकी नहीं रहता; उसमें फिर सभी गुण आएंगे। बहुत बड़ा लाभ हुआ है, जो कि बयां ना हो सके, ना ही तोला जा सके।

प्र. 4-10

✷ भगवान से जितना अंतराय रहता है, उतना अंतर में दुःख रहता है। हमारी फिकर भगवान को है। भगवान हमारी रक्षा में हैं। जैसे बच्चे मां-बाप को गहने बनवाने के लिए कहते नहीं हैं, पर मां-बाप स्वयं ही बनवा देते हैं; वैसे ही हमें भगवान को कहना नहीं पड़ेगा, वे स्वयं ही रक्षा करेंगे। तब फिर, तुम कहोगे कि भगवान के भक्त को देह में रोग क्यों आता है? वह तो देह में वासना खूब है, सो वह वासना तुड़वाने के लिए रोग थोप कर बाद में शुद्ध करते हैं।

प्र. 4-11

✷ तीर्थ के प्रति जल की बुद्धि नहीं करना व भगवान के भक्त के प्रति जाति भेद की बुद्धि नहीं करना। भगवान का भक्त चाहे अछूत ही क्यों ना हो? पर, वह सारे परिवार का मोक्ष करता है। वर्ना तो चाहे बारह गुण युक्त ब्राह्मण भी हो, पर वह खुद अपना भी मोक्ष नहीं कर सकता।

प्र. 4-12

✷ हमारे प्रभु तो अभी यहाँ पृथ्वी पर हैं। इस बात में बहुत ही मर्म (रहस्य) है; जो यह जानते होंगे वे समझते हैं और ऐसी बातें व ऐसे साधु पृथ्वी पर कभी भी आये नहीं हैं और अब आयेंगे भी नहीं।

प्र. 4-13

✷ मध्य का ग्यारहवाँ वचनामृत पढ़वा कर बात करी कि यह वचनामृत सभी गृहस्थों को समझने जैसा है और जब तक यह बात नहीं समझे होंगे, तब तक जीव में से संशय मिटेगा ही नहीं।

प्र. 4-14

✷ प्रगट भगवान मिले हैं, सो परिपूर्ण कल्याण मानना, पर अधूरा मानना नहीं। साधन करने या साधु होना–वह सब तो कोई विघ्न ना हो इसलिए करना है, पर उपासना की दृढ़ता रख कर चिपके रहोगे, तो पार उतर ही गये हो ! और जिस संत में भगवान रहे हों उसकी सेवा करें, तो वह हमें पुरुषोत्तम भगवान से मिलवा देगा।

प्र. 4-15

✷ 'सत्संग' शब्द का अर्थ–बड़े संत का संग–वह सत्संग। जिसने बड़े संत को वश किया, उसे तो भगवान वश हो गये !

प्र. 4-16

✷ विषय के त्याग की बहुत बातें करके फिर बोले कि सांख्य से जनक राजा की भांति (माया से) अलग पड़ना—यह भी एक मार्ग है; पर हमें तो विषय का त्याग करना यह मार्ग है।

प्र. 4-17

✷ ....काम, क्रोध आदि जो अंतर के शत्रु हैं, उन्हें जीव अपनी ताक़त से जीत पाये वैसे नहीं हैं, पर हम व बड़े संत तुम्हारे पक्ष में हैं व हम सहाय करेंगे, सो जीत पाओगे। अतः आप हिम्मत रख कर लगे रहना......

प्र. 4-18

✷ जिसे जीव का श्रेय कराना हो, उसे इस साधु के पास आकर बातें सुननी।

प्र. 4-21

✷ एक उपासना, दूसरी आज्ञा, तीसरा संत समागम व चौथा सत् शास्त्र का व्यसन—ये चार दृढ़ करके रखना।

प्र. 4-22

✷ ...गुणातीत ऐसे जो भगवान, जीव उनका दर्शन करे तो ब्रह्मरूप हो जाए। परंतु भगवान की माया इतनी प्रबल है कि इस प्रकार कोई दर्शन ही नहीं कर पाता !

प्र. 4-23

✷ बड़े संत की प्रसन्नता के बिना बीजरूप वासना टलती नहीं है। नहीं दौड़ना हो तो भी दौड़ पड़ें व न देखना हो तो भी देख लें ऐसा अवस्था का बल है.....

प्र. 4-25

✷ किसी जगह पर स्वामिनारायण को 'भगवान' कहे जाने पर हमारी बात का स्वीकार होता है और किसी जगह पर स्वामिनारायण को 'भगवान' ना कहे जाने पर स्वीकार होता है। सो, जिस प्रकार बात बैठती हो, वैसी बातें करनी चाहिएं।

प्र. 4-28

✷ इतना ही समझना है कि देह छोड़कर जिन्हें मिलना था, जिन्हें पाना था और दूसरे भक्तों ने भी देह छोड़कर जिन्हें पाया है उन्हें हमने जीतेजी पा लिया है। वही के वही भगवान व वही के वही साधु हैं। पर हमें जो प्राप्ति, महिमा, सुख व लाभ हुआ है, उसे हमने पहचाना नहीं है; क्योंकि भगवान की माया ने बाँध लिया है। जितना अज्ञान है इतना दुःख है...

प्र. 4-30

✷ ....स्वयं निष्कामी हो और निष्कामी की रीत को जानता हो, वही दूसरों को निष्कामी कर सकता है।

प्र. 4-31

✷ ऐसी बातें दूसरी कोई जगह नहीं होती, ये तो अक्षरधाम की बातें हैं, भगवान की हैं, नारायण की हैं और बुद्धिशाली हो वह साधु को पहचाने, सत्संग को पहचाने। इसलिए महाराज ने कहा है कि बुद्धिशाली से मुझे लगाव होता है।

प्र. 4-35

✷ हम तो आत्मा हैं, ब्रह्मरूप हैं और अभी कुछ दिखाई नहीं पड़ता, परंतु जब देह छोड़ेंगे तब दिखाई पड़ेगा और गीता में कहा है कि **'यश्च मूढ'** होकर जो मुझे जानता है, उसे और कुछ जानना रहता नहीं है व हमारी महिमा तो बहुत अधिक है और देह में यदि दोष होंगे भी, तो देह छोड़ कर भगवान की सेवा में रहना है। भगवान मिले हैं उन्हें कहीं दूसरी जगह रहना नहीं है। हमें यदि हमारी सामर्थ्य दिखा दें तो (हम) उन्मत्त हो जाएं व (फिर) किसी को कुछ गिने ही नहीं। विश्वरूपानंदस्वामी किसी को कुछ गिनते नहीं थे, (यहां तक कि) महाराज के वश भी रहते नहीं थे ! और फिलहाल तो महाराज प्रगट हैं, जो कि सत्संगी हो वही जान सकता है, दूसरे नहीं जान पाएंगे। इन बातों को जो सुनें, उन्हें ही हम 'सत्संगी' जानते हैं; वर्ना तो भले कपड़े भी क्यों ना गेरुए करे हों, उसे हम 'सत्संगी' मानते नहीं हैं।

प्र. 4-36

✷ प्रगट भगवान के बिना कोई करोड़ नियम पाले, पर कल्याण नहीं होता है। प्रगट भगवान और इस प्रगट साधु की आज्ञा से एक नियम रखे, तो कल्याण होता है और आज तो मौज दे दी है; उस मौज का मूल्य नहीं होता। इसलिए ग्यारह नियम पालने व महाराज को भगवान पुरुषोत्तम–सर्व के कारण समझना। ऐसी ज्ञान की दृढ़ता करे, उसे कुछ करना बाकी रहा नहीं है। भजन कम होगा, तीर्थ यात्रा कम होगी उसकी चिन्ता नहीं है।

प्र. 4-37

✷ स्वामिनारायण के नाम से काले सर्प का जहर चढ़ता नहीं है और किसी की देह का आयुष्य पूरा हुआ हो तो मर जाये, वर्ना यह मंत्र जपे तो मरे नहीं। ये भगवान, यह मंत्र व ये साधु और कोई जगह पर नहीं हैं।

प्र. 4-38

✷ 'दूसरों को तो कामवासना परेशान नहीं करती, मुझे अकेले को ही परेशान करती है व दूसरों में तो एक भी दोष नहीं है, मेरे में ही हैं'–जो यूँ नहीं समझे व दूसरों में दोष देखने लग पड़े, तो उसका बुरा होता है।

प्र. 4-39

✷ धर्म तो लाज से रहता है और धना भक्त भी हमारी तरह ही महाराज को भगवान मानता है, परंतु नियम में नहीं रहा तो धर्म से भ्रष्ट हुआ।

प्र. 4-43

✷ लाभ का पार नहीं है और इसमें से (इस सत्संग से) धक्का लग जाये, तो खोट का भी पार नहीं है। बहुत ही बड़ा लाभ हुआ है, वह कहा जाये ऐसा नहीं है।
प्र. 4-44

✷ ....जिसे भगवान में जुड़ जाने की रुचि हो और उसकी देह का अंत आ जाये, तो भगवान व साधु उसकी मदद करते हैं, रक्षा करते हैं, जिससे कि वह भगवान के साथ जुड़ जाता है। इसलिए रुचि अच्छी रखना।
प्र. 4-45

✷ .....विपरीत परिस्थिति आती है तब भगवान याद नहीं आते और उद्वेग होता है उसका क्या समझना? स्वामी ने उत्तर किया कि भगवान सर्वकर्ता हैं। कठिन परिस्थिति में तो किसी को भगवान याद आये ही नहीं, पर इस लोक में चिपक न जायें और इस लोक में वैराग्य हो जाये व चिपका नहीं जाये इसलिए भगवान ने उसे दुःखी रखा है। सो सर्वकर्ता भगवान को समझना।
प्र. 4-48

✷ ....जिस समय जिसके हाथों कल्याण करने का भगवान ने सौंपा हो, उससे कल्याण होता है। जैसे परीक्षित को शाप हुआ, तब व्यासजी आदि कई खूब बड़े थे, पर शुकजी आये तभी कल्याण हुआ।
प्र. 4-49

✷ यह साधु मनुष्य जैसा दिखाई पड़ता है, पर मनुष्य जैसा नहीं है। आज तो प्रगट भगवान हैं, प्रगट साधु हैं, प्रगट धर्म है और इस वेला में जिसने नहीं पहचाना, उसे बाद में सर कूटना पड़ेगा अर्थात् पछताना पड़ेगा।
प्र. 4-50

✷ पापी का संग लग जाये तो साठ हजार साल का पुण्य चला जाये और इस साधु का संग लग जाए तो साठ हजार साल का पाप खाक हो जाये और पुण्य उदय हो जाये।
प्र. 4-51

✷ हमें तो भगवान ने राजी होकर स्वयं का अक्षरधाम बक्शिश दिया है। भगवान ऐसे उदार हैं कि जिसके ऊपर राजी होते हैं उसे स्वयं का धाम बक्शिश दे देते हैं। सत्संग तो बाद में दस हजार गुणा बढ़ेगा, पर यह साधु और ये बातें नहीं मिलेंगी। महाराज प्रगट हुए तब यह साधु दिखाई पड़ा, वर्ना तो यह साधु (भगवान की हुजूर के सिवा) और कहीं पर हो ही नहीं सकता।
प्र. 4-52

✷ ....ऐसी बातें तो दिल में अपने आप ढल जायें, मानो जैसे गाय अपने बछड़े को देखकर स्वयं ही दूध छोड़ देती है, तब हो सकती हैं। वर्ना तो हो ही नहीं सकती और ये बातें दोबारा जन्म नहीं होने दे ऐसी हैं।
प्र. 4-53

✷ जैसे समुद्र को गाय के पांव की छाप की भाँति कोई लांघ जाये, वैसे पांडव भगवान के प्रताप से दुःख को आसानी से तैर गये।
काम-क्रोध जीतना अति कठिन है, क्योंकि वे तो तीमंगल व दुर्योधन की सेना से भी अधिक बलवान हैं; परंतु भगवान की आज्ञा में रहने से हम उन्हें तैर जायेंगे। सो भगवान के प्रताप का बल रखना।

प्र. 4-54

✷ ....देह है, सो दोष तो होंगे ही, पर भगवान अंदर जीव में बैठे हैं, तो देह भले छूट जाये, परंतु भगवान अंदर से निकलें वैसे नहीं हैं।

प्र. 4-55

✷ .....'मुक्त' हो उसे विषय भाये नहीं। अक्षरधाम में भगवान हैं व यहाँ जो आए हैं वे ही वहाँ पर हैं। इस भगवान में और अक्षरधाम में जो हैं उसमें तनिक भी फर्क नहीं है यूँ समझना, वही माया से तर जाता है।

प्र. 4-57

✷ अक्षरधाम और अक्षर के मुक्तों सहित भगवान यहाँ (धरती पर) आए हैं और भगवान को कुछ चाहिए नहीं। दान, चंदा वग़ैरह जो लेते हैं, वह तो वे हमारी सेवा अंगीकार करते हैं। त्यागी व गृहस्थों दोनों के कल्याण के लिए यह रीत चलाई है। गृहस्थाश्रम है, सो व्यवहार तो करना पड़े, पर उसका भजन (चिंतन) नहीं करना। सब कुछ पाया था, पर भगवान नहीं पाये थे। उन्हें भी पा लिए। अब कुछ पाना बाकी रहा क्या? कुछ पाना शेष नहीं रहा; सब कुछ पा लिया है।

प्र. 4-58

✷ ....देह को छोड़कर जिन्हें पाना था, जिन्हें मिलना था, वे भगवान हमें मिल गये हैं ! देह छोड़कर जिन भगवान को पाना था, साधु को पाना था, वे भगवान और साधु ये जो हमें मिले हैं, वे ही हैं, यूँ गद्दी पर हाथ ठोक कर कहा। यह जो साधु है वह भगवान का धाम है। उसे जीतेजी ही पा लिया है व किसी के कसूर में न आयें सो 'शिक्षापत्री' पालनी। इसलिए ही महाराज ने लिखी है।

प्र. 4-59

✷ प्रगट भगवान हैं, प्रगट साधु है, प्रगट मोक्ष है—सो धर्म में रहकर आयु पूरी कर लेनी। बहुत ही बड़ा लाभ हुआ है। उसे संभालना, वर्ना जैसे कोई आँख में धूल डालकर चिंतामणि छीन ले, यूं कोई ले जायेगा। भगवान का यह करिश्मा है। वर्ना भगवान के सिवा, कोई इतने जीव के अंतर शुद्ध नहीं कर पायेगा। भगवान हो वही अंतर पकड़ सकता है और यह बहुत ही बड़ा लाभ हुआ है। वह क्या कि—महाराज का प्रगट होना और उसी दौरान हमारा जन्म हुआ है। तब जाकर ये बातें मिली हैं। वह तो बहुत ही लाभ हुआ है—यूँ कई बार कहा।

प्र. 4-60

✷ अक्षरधाम बहुत ही दूर है, परंतु हमारे लिए भगवान ने करीब कर दिया है। यह मनुष्य जैसे होकर बैठे हैं और आपको अक्षरधाम के मुक्त जैसी बातें समझ में आती हैं व करते हैं वह भगवान का और इस साधु का अनुग्रह है और ऐसा समागम मिला है तब भी अहो ! अहो ! नहीं होता–वह तो इसलिए कि ऐसी बात कभी करी नहीं, पर इस लोक का ही कूट-कूट करा है।

प्र. 4-62

✷ .....घर में रहना–वह तो मेहमान की भाँति रहना।

प्र. 4-63

✷ ...कोई पूछेगा कि अक्षरधाम कैसा होगा? तो भगवान देखे हैं, अक्षरधाम में रहने वाले देखे हैं, भगवान के हुजूर में व भगवान के पास रहने वाले देखे हैं तथा कान में बातें करी हैं। अब तो तेज नहीं दिखाई पड़ता–यह बाकी है। पर यह जो साधु है उसमें ही भगवान रहे हैं। सो विश्वास रखना।

प्र. 4-67

✷ .... बहुत बड़ा लाभ हुआ है इसलिए बाजरा इकट्ठा करके साधु के पास बैठे रहना।

प्र. 4-68

✷ महाराज कहते हैं कि हरिभक्त के अवगुण मैं नहीं देखता। अवगुण यदि दिख भी जाये, तो मुँह फेर लेता हूँ; जैसे लोक में माँ-बहन को निर्वस्त्र-खुले बदन देखकर कोई मुँह फेर लेता है।

प्र. 4-69

✷ हमारी कसर कितनी है? तो संत जैसे मिले हैं वैसी उनकी महिमा जानते नहीं हैं व जो लाभ हुआ है वह भी समझते नहीं हैं–जैसे गायकवाड़ राजा का लड़का मूली के लिए रोये–इतनी खोट है।

प्र. 4-70

✷ ....यह साधु पहचाने गये वह बड़ी बात है। यह साधु पहचाने जायें ऐसे नहीं हैं। यह तो परदेशी साधु हैं। वह पहचाने गये, यह तो आश्चर्य जैसा है।

प्र. 4-71

✷ संकल्प करे उसे महाराज कुछ देते नहीं थे। वहाँ दृष्टांत है कि–एक बार महाराज दही-भात खा रहे थे। तब सभी को प्रसादी पाने का संकल्प हुआ और मैंने नहीं करा। तो, मुझे बुला कर प्रसाद दिया।

प्र. 4-73

✷ (आप सबने) भगवान की जो पहले सेवा की थी, उसका फल देने के लिए महाराज हमें छोड़ गये हैं।

प्र. 4-74

✷ साधु का सेवन किया हो और निर्वासनिक हो, तब भी श्री कृष्ण भगवान तथा पर्वतभाई एवं गोर्धनभाई की तरह संतान तो होगी, परंतु उन्हें विषय का चिंतन नहीं होता। वासनायुक्त हो और साधु का सेवन न किया हो, वह तो चाहे जंगल में आसन लगाकर बैठे, तो भी प्रीति तो गांव की ही लगी रहती है। वह चाहे कुछ त्याग भी करे, पर उसी का चिंतन रहेगा और जिसने साधु का सेवन किया हो, वह देह से भले क्रिया करता रहे, पर उसे विषय का चिंतन नहीं होगा।

प्र. 4-75

✷ समागम के बिना कसर रह जाती है। कोई यदि बलवान हो तो शायद गिरे तो नहीं, परंतु संग के बिना वृद्धि को नहीं पा सकता। समागम के बिना वासना तो रहे, परंतु हमारे स्वामी को हमारी चिंता है। वे किसी ऐसे बड़े का जोग देकर कसर टलवायेंगे। ये बातें अभी तो ख्याल नहीं पड़ती, पर आगे जाकर इसके बड़े वृक्ष होंगे।

प्र. 4-76

✷ संग तीन प्रकार का हैः उसमें–

1. जिसे विषय का संकल्प नहीं उठता हो, वह उत्तम।
2. वासना को दबाकर जो आज्ञा में रहे, वह मध्यम।
3. और जो आज्ञा नहीं पाले, वह कनिष्ठ।

प्र. 4-77

✷ अछूत भी अमृत पी ले, तो वह अमर हो जाए।

प्र. 4-78

✷ एक को तो ऐसा आता है कि–प्रवृत्ति में तो रखें, पर उसमें लिप्त न होने दे और दूसरा तो ऐसा डूबो रखे कि उसमें से कभी निकल ही ना पायें। .... हम विषय छोड़ने को तैयार नहीं हैं, परंतु हमें जो मिले हैं वे साधु हम में रहने दें, ऐसे नहीं हैं। हमें तो इस साधु का काम है। वे मिले हैं सो किसी बात की फिकर नहीं है।

प्र. 4-80

✷ सत्त्वगुणी को भगवान का निश्चय नहीं हो और तमोगुणी को भगवान का निश्चय हो जाये....... यूं गुण का कोई मेल नहीं है। सो रजोगुण, तमोगुण व सत्त्वगुण–इन तीनों से परे गुणातीत होना, वह सही है।

प्र. 4-81

✷ धन से आसक्ति टल गई हो, वह धन कमाने के लिए लग नहीं पाएगा और वह चाहे व्यवहार करे भी, तो न किये जैसा ही करे।

प्र. 4-82

✷ ...हमें भगवान में प्रीति है, पर दिखाई नहीं पड़ती—इस बात पर महाराज का कहा हुआ एक दृष्टांत दिया कि जैसे जीवाखाचर को जागीर के प्रति लगाव है जो कि फिलहाल दिखाई नहीं पड़ता, परंतु यदि कोई उससे छीनने आ जाए तब पता चलेगा; उसी प्रकार कोई हमारा सत्संग छुड़वाने आए तब लगाव का पता चले।

प्र. 4-83

✷ .....सुखी रहना हो, उसे तो स्वयं की अपेक्षा जो दुःखी हों, उनका ख्याल करना, परन्तु स्वयं की अपेक्षा जो सुखी हों, उनकी ओर नहीं देखना, क्योंकि सुख तो प्रारब्ध के अनुसार मिला है।

प्र. 4-84

✷ महाराज ने अनेक प्रकार के साधन, नियम बनाये हैं, उसमें मुख्य ब्रह्मचर्य है। महाराज का अवतार तो मूल अज्ञान का नाश करने के लिए हुआ है।.... वह मूल अज्ञान क्या? तो, स्वयं के स्वरूप को तीन देह से भिन्न समझ कर भक्ति न करे—यही मूल अज्ञान है। यह बात करोड़ जन्म लेने पर भी समझ में नहीं आयेगी। बड़े साधु समझायेंगे, तब समझ में आयेगी।

प्र. 4-85

✷ ...सनकादिक को कनिष्ठ कहेंगे और शुकजी को अधिक कहेंगे, तो सब कहेंगे कि देखो साधु की निंदा करते हैं; परंतु, सनकादिक को वैराट (नारायण) की उपासना है, सो वे कनिष्ठ हैं और शुकजी को श्री कृष्ण की उपासना है (जो एक बार धरती पर मानवस्वरूप में प्रगट हो चुके हैं)। सो, वे अधिक हैं, ऐसा महाराज ने खुद अपनी बातों में लिखवाया है।

प्र. 4-86

✷ बड़े संत के प्रति अवगुण नहीं होगा और हम में यदि कोई दोष होगा भी, तो वह फिकर भगवान को है। बड़े संत के प्रति अवगुण होगा वह तो वज्रलेप होगा।

प्र. 4-87

✷ आगे घोलका—अमदावाद आयेगा, उसमें कुछ देखना नहीं। जिसे देखना है, पूजना है, सेवा करनी है वह तो तुम्हारे साथ है, सो उसी के सामने देखते रहना। परंतु यह बात समझ में आये ऐसी नहीं है और सब कहते हैं कि गोपालस्वामी, नित्यानंदस्वामी देह छोड़ गए, अब किसके पास जायें? परंतु रघुवीरजी महाराज बहुत ही बड़े थे, जबकि इनके देह छोड़ने के बाद वे पहचाने गये। हमें बहुत ही लाभ हुआ है। वह महिमा ब्रह्मा के कल्प तक कहें तो भी पार नहीं आये। पर, यदि नहीं समझे तो खोट भी बहुत है, उसका भी ब्रह्मा के कल्प तक कहें, पार नहीं आयेगा। यूँ प्रगट स्वरूप को पहचानने की बहुत ही बातें करी।

प्र. 4-88

✷ ...महाराज को मिले हुए देह छोड़ देंगे, तब किसी मुक्त को भेजेंगे और वह भी इसी संप्रदाय में ही पुनः भेजेंगे, क्योंकि ऐसा शुद्ध संप्रदाय और कोई नहीं है।

प्र. 4-89

✷ अमदावाद में बात करी कि फिलहाल महाराज प्रगट हैं, वैसे ही ज्ञान देते हैं, वैसे ही नियम में रखते हैं, वैसे ही धर्म का आचरण कराते हैं और वैसे ही उपदेश देते हैं।

प्र. 4-90

✷ दूसरा कुछ करना नहीं है, उनके होकर उन्हें जीव सौंप देना है। यह कर लिया, सो सब कुछ कर लिया है और अक्षरधाम में महाराज ऐसे ही उत्तर की ओर मुखारविंद करके बैठे हैं.....

प्र. 4-91

✷ जो लिखा वह पढ़ा नहीं तो वह लिखा हुआ न लिखने के बराबर है और पढ़ा भी लेकिन उस पर ध्यान नहीं दिया तो वह पढ़ा हुआ भी न पढ़ने के बराबर है और शायद ध्यान भी दिया, पर वैसा करने उस मार्ग पर यदि चलें नहीं हैं, तो भी क्या? इसलिए रजोगुण, तमोगुण जब न हों और सत्त्वगुण प्रवृत्त हो तब स्थिर होकर, स्थिर मन से पढ़कर मन को टटोलना, तो हल मिलेगा। मन को टटोलने का मतलब–जो बातें सुनीं-पढ़ी वह भीतर में उतारनी और उसके मुताबिक चलते हैं या नहीं, यह खोज कर वैसा ही करना।

प्र. 4-92

✷ जैसे किसी के घर में चिंतामणि गाढ़ी हुई हो, परंतु जब तक खोदकर उसे निकालेगा नहीं, तब तक वह दरिद्र-गरीब रहेगा। ऐसा ही आत्मा-परमात्मा के ज्ञान का है।

प्र. 4-93

✷ जब-जब कामादि दोष परेशान करने आयें, तब-तब उसकी उपेक्षा करनी चाहिए। मतलब, वे संकल्प छोड़कर दूसरी क्रियाओं में जुड़ जाना, ताकि उस संकल्प का जोर चले नहीं..... कामादि के संकल्प टालने के और भी उपाय कहे हैं, परंतु सब उपायों के बजाय उस समय दूसरी क्रिया में लग पड़ना जिससे कि वह संकल्प टल जायें।

प्र. 4-94

✷ प्रथम साधन दशा में तो पूर्ण ज्ञान नहीं होता है और पूरा ज्ञान जब तक ना हो, तब तक पूरा सुख भी नहीं आ सकता। उस पर दृष्टांत दिया कि जैसे थोड़ी बारीश होने से नदी में पुराना व नया पानी इकट्ठा होने पर वह गंदा बनता है, परंतु काफी बारीश हो तभी सारा पानी साफ व नया होगा। यूँ परिपूर्ण ज्ञान होवे, तब सुख होता है।

प्र. 4-95

✷ ....जब तक स्वयं को पुरुष मानेंगे, तब तक स्त्री चाहिएगी और जब तक स्वयं को स्त्री मानेंगे, तब तक पुरुष चाहिएगा। वह गौलोक तक चाहिए होगा। इसलिए 'निजात्मानं ब्रह्मरूपं' यह सिद्धांत है।

प्र. 4-96

✷ ....कथावार्ता में ही सुख है। दूसरे सब काम करने वाले बहुत हैं। जो आज्ञा करें, उसमें तैयार हैं, परंतु करने जैसा तो ध्यान है व उसमें ही सुख है। पर, यहीं पर अटकते हैं, परंतु किए बिना तो छुटकारा नहीं है। नींद व स्त्री को बराबर कहा है।

प्र. 4-97

✷ आत्यांतिक प्रलय यानि–ज्ञान प्रलय तक समझना है। जिसने ज्ञान प्रलय किया हो, उसके साथ जुड़ जाने से वह होगा।

प्र. 4-98

✷ मंदिर चाहे सोने के बनवाओ या तपस्या से देह सुखा दें इत्यादि चाहे कितने ही साधन करो, परंतु मैं जैसा हूँ वैसा जाने तब राजी होता हूँ, ऐसा महाराज ने कहा है।

प्र. 4-99

✷ स्वयं को जीवरूप मानने में तो दोष रहेंगे और अक्षररूप मानने में दोष ही नहीं रहता। अक्षर में जाना है ऐसा रहता है; परंतु स्वयं को अक्षर माने तब जाना कहाँ रहा?

प्र. 4-100

✷ हमारा जन्म दो बातें सिद्ध करने के लिए हुआ है। एक तो अक्षररूप होना, उसमें देह अंतरायरूप है और दूसरा भगवान में जुड़ जाना, उसमें संग अनेक प्रकार के अंतरायरूप हैं। ये दो कसर टालनी हैं।

प्र. 4-101

✷ स्वयं के गुणों को अन्य को दिखाने का प्रयास करे–वह कनिष्ठ
और जो दिखाये भी नहीं, पर छिपाये भी नहीं–वह मध्यम
और
जो छिपाये ही रखे–वह उत्तम पुरुष है।
और बड़े संत हमारे ठहराव और हमारी रुचि के अनुसार प्रतिपादन करते हैं।

प्र. 4-102

✷ एक तो पति का गर्भ और दूसरा परपुरुष का गर्भ–इसमें जैसे फर्क है, वैसे ही भगवान का बल लेना और साधन का बल लेने में फर्क है। ऐसा महाराज ने कहा है।

प्र. 4-103

✷ शास्त्र हैं, वह कार्य है और बड़े पुरुष हैं वह कारण है।

प्र. 4-104

✷ मानसी पूजा तो अंतःकरण में होती है क्योंकि संकल्प करने पड़ते हैं। इसलिए वह तो सूक्ष्म देह है और प्रतिलोभ में तो संकल्प नहीं होता व स्वयं को निराकार मानना तथा उसमें भगवान तो रहे ही हैं। जैसे पृथ्वी में जल रहा है, दूध में घी रहा है और तिल में तेल रहा है व फूल में सुगंध रही है, उसी प्रकार जीव में भगवान रहे हुए हैं।

प्र. 4-105

✷ निरंतर स्वयं को टटोलना चाहिए और मुड़ कर सोचना चाहिए कि यह करना है और मैं क्या करने आया हूँ व क्या हो रहा है?

प्र. 4-106

✷ एक सरीखी रुचि वाले पांच या दो ही इकट्ठे हों, तब भी लाखों-करोड़ों के बराबर हैं और उसके बिना तो चाहे कितने भी इकट्ठे हुए हों तब भी अकेले जैसे ही हैं।

प्र. 4-107

✷ बड़े संत के समागम में रहे तो ध्यान, भजन में कमी आ जाये और ध्यान, भजन करने लगे तो संग करने में कमी आ जाये। उसमें फिर क्या करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर दिया कि संग करना। संग से विषय टलने वाले हैं, पर संग के बिना विषय कैसे टलेंगे?

प्र. 4-108

✷ ....यदि विषय नहीं भोगते तो उसका चिंतन होता है। सो, यदि (विषय) बहुत जोर कर जाये तो उसे भोगना। परंतु नहीं भोगना व छोड़ देना, यही सिद्धांत है।

प्र. 4-109

✷ बड़े संत के साथ जीव जोड़ें, तो दोष टलते हैं और संत के गुण आते हैं। जैसे काँच को सूर्य के सामने रखा जाये, तो उसमें से अग्नि प्रगट होती है।

प्र. 4-110

✷ हमें महाराज मिले हैं, सो स्वयं को अक्षररूप मानना परंतु देहरूप नहीं मानना और विषय हरा दें यह तो देह की राह ही है। फिर भी 'अक्षर' मानना चाहिए।

प्र. 4-111

✷ भगवान का निश्चय है, परंतु यदि कोई मंदिर छीन ले और भगवान सहाय न करें, तो कईओं का निश्चय टल जाये। दृढ़ निश्चय वाले को तो भले सब कुछ लुट जाये, तब भी संशय नहीं होगा।

प्र. 4-112

- सर्वोपरि ज्ञान के मत से तो यह जगत व जगत का व्यवहार है ही नहीं और यह लोक-जगत तो कई प्रकार से बाधारूप बनता है।

प्र. 4-113

- शहर का सेवन, भंडार, कुठार, रुपये, अधिकार आदि—ये सब जीव के बिगड़ने के हेतु हैं।

प्र. 4-114

- बड़े संत का सेवन यदि एक वर्ष भी किया हो, तब भी बड़े संत उसका ख्याल रखते हैं। जैसे आरुणि उपमन्यु कुएँ में गिर गये थे, तो उनके गुरु ढूंढते-ढूंढते वहाँ गए।

प्र. 4-115

- ऐश्वर्य तो दैत्य में भी होता है। पृथ्वी को टीप कर, समेट कर वह ले गया। सो, इसमें माल नहीं मानना चाहिए।

प्र. 4-116

- दो प्रकार का सुख है—एक तो ज्ञान से सुखी और एक तो भगवान की मूर्ति के ध्यान से सुखी। सांख्य व योग इन दोनों में से एक हो, तो सुखी हो पायेंगे।

प्र. 4-117

- लड्डू खाने और पत्तल जो देह है—वह फैंक देना।

प्र. 4-118

- जिसे भगवान की सही अर्थ में उपासना हुई हो, उसे यदि किसी कारणवश नरक के कुंड में डाल दिया जाये, तो वहाँ भी उसे आनंद रहेगा। क्योंकि यह देह जो है, वह भी नरक का कुँड ही है, तब भी जीव इसमें चिपका है।

प्र. 4-119

- दो प्रकार के मुक्त हैं। उनमें एक के मत से जगत मृगजल की तरह दिखाई तो पड़े, पर पिया नहीं जा सकता और एक के मत से तो जगत है ही नहीं, जैसे सूर्य के मंडल में रात्रि नहीं है—वैसे।

प्र. 4-120

- सौ करोड़ रुपये में से यदि एकाद रुपया खो जाये उसकी गिनती नहीं, वैसे ही भगवान की महिमा जिसने समझी हो, उसे किसी बात की गिनती रहे नहीं।

प्र. 4-121

- ज्ञान तो निवृत्ति में ही हो सकता है। परंतु सारा दिन खाली तो रहा नहीं जाये, सो प्रवृत्ति में जोड़ते हैं, वर्ना तो जीव देहाभिमानी हो जाये।

प्र. 4-122

- कईयों को मन नचाता है और कई तो मन को नचाते हैं। यह बात नित्य सोचने जैसी है।

प्र. 4-123

- वासना वाला अक्षरधाम में जाये या नहीं? महाराज ने इस प्रश्न का उत्तर दिया कि—नीम के पेड़ पर ऊँची कोई वस्तु बंधी हो और उसे उतारने कोई परिश्रम कर रहा हो, पर उससे यदि उतारी न जाती हो तो और कोई उसे उतार कर दे देता है। वैसे ही यदि वासना टालने की कोई कोशिश कर रहा हो, तो उसे भगवान सहाय करते हैं।

प्र. 4-124

- भगवान का सुख नहीं आता उसकी वजह क्या है? तब बोले कि—उसे विषय ने अपनी पकड़ में जकड़ रखा है।

प्र. 4-125

- भगवान मिलने मुश्किल हैं, वैसे ही ये साधु मिलने मुश्किल हैं और वैसे ही विषय छोड़ने मुश्किल हैं।

प्र. 4-126

- बरसात सुखदायी है, परंतु जिसके घर में पानी भर जाता हो, उसे दुःखदायी है और कालरूप है व बड़े जीव को जो सुखरूप है वह छोटे जीव को दुःख रूप है।

प्र. 4-127

- संग का फर्क इस प्रकार है कि जो सौ जन्म में एकांतिक होने वाला हो वह संगत से आज हो जाये और इस जन्म में एकांतिक हो उसे भी सौ जन्म लेने पड़ें। ये दो फर्क हैं। वहाँ उदाहरण दिया कि लकड़ी और पत्थर एक दूसरे को तारें भी और डुबोयें भी।

प्र. 4-128

- हर एक बात में—बोलने में, क्रिया में जो सूझ आये, वह महाराज की 'प्रेरणा' समझनी।

प्र. 4-129

- भगवान की मूर्ति, भगवान के साधु और भगवान की आज्ञा इन तीनों बातों में ही माल है और किसी बात में ऐसा माल नहीं है। ज्ञान, वैराग्य व धर्म, वे तो कुदाली, फावड़ा, दराँती की जगह पर हैं।

प्र. 4-130

- भगवान अँधेरे में बैठे हों और हमारे वहाँ जाने पर हमारे उजाले से भगवान का दर्शन हो, तब भी यूँ समझना कि यह सब कुछ उनकी ही देन है। इसे ज्ञान कहा जाये। यह बात समझना।

प्र. 4-131

- भगवान को यदि रोटी देनी होगी तो आकाश में से भी देंगे, यदि नहीं देनी होगी, तो घर में होते हुए भी जल जायेगी।

प्र. 4-132

✷ नौटंकी करने वाला भेष बनाता है; उसे जो मूर्ख है, वह स्त्री रूप में देखता है और जो सयाना है वह पुरुष जानता है। इसी प्रकार जगत मिथ्या है।

प्र. 4-133

✷ निर्वासनिक संत के साथ लगाव हुआ हो, तो वह उसे धक्के मारकर भी (अक्षरधाम में) ले जाता है। लेकिन सवासनिक को कैसे पता चले कि मुझे लगाव हुआ है? तब बोले कि—संत की आज्ञा से या प्रारब्धवश यदि दूर रहना पड़े, तब भी उसे उनके पास रहा करने की लगन रहा करे और धक्के क्या? तो—उसके 'विषय' का अनेक प्रकार से खंडन कर डाले।

प्र. 4-134

✷ शांत व्यक्ति में काम व अभिमान रहता है और तेज व्यक्ति में मान रहता है।

प्र. 4-135

✷ वचनामृत से अधिक अन्य किसी में माल माना जाये वही मोह जानना।

प्र. 4-136

✷ भगवान मिलने पर भी शायद कुछ कसर रह जाये, परंतु ये साधु मिल जायें तो कोई कसर रहने नहीं देंगे।

प्र. 4-137

✷ जैसे-जैसे भगवान की आज्ञा में रहेंगे वैसे-वैसे कामादिक दोष तो मंद पड़ जायेंगे, परंतु बीज रूप से तो रहते हैं। वह तो सत्पुरुष की कृपा दृष्टि हो तब वह बीज नष्ट होता है और सत्पुरुष की दृष्टि तो गुण व सेवा से ही पड़ती है।

प्र. 4-138

✷ महाराज ने वासना टालने की बातें करी तब शुकमुनि ने कहा कि आप मिले हो फिर वासना का क्या भार है?
तब महाराज ने कहा कि मैं मिला हूँ सो तुम्हारी रक्षा तो करूँगा, पर जब तक वासना रहेगी तब तक तुम्हारी घबराहट जायेगी नहीं—सो निर्वासनिक होना। वहाँ दृष्टांत दिया कि—कोई सोया हो व उसके ऊपर सर्प चढ़ जाये और अन्य कोई करीब होगा, वह उसकी रक्षा तो करेगा, परंतु उस सोने वाले की घबराहट जायेगी नहीं। यूँ तुम्हारी रक्षा तो मैं करूँगा, पर वासना होगी तब तक तुम्हारी घबराहट मिटेगी नहीं, सो निर्वासनिक रहना।

प्र. 4-139

✷ भगवान के भक्त की महिमा-गुण गाते रहना; उससे जीव ब्रह्मरूप हो जाता है और उसमें कुछ परिश्रम भी नहीं। यह करने को कहा है। परंतु फलां ऐसा व ढीकना वैसा यूँ भगवान के भक्त के दोष नहीं कहने चाहिएं और वह करना भी क्यों? यदि किसी को फिलहाल नहीं समझ में आता होगा, तो आगे

जाकर समझ में आयेगा। उसकी जल्दी भी क्या है? और वह भागकर भी कहाँ जायेगा? परंतु किसी के दोष नहीं कहने चाहिएं......

प्र. 4-140

✷ ....देह है सो विषय तो भोगने पड़े। परंतु अनादर से भोगने चाहिएं, आसक्ति से नहीं भोगने चाहिए और अभी तो महाराज के प्रगट बैठे होने पर जैसा समाधान व भजन हो, वैसा ही समास व भजन हो रहा है।

प्र. 4-141

✷ ....यदि भगवान का माहात्म्य हो व साधु का संग हो तो विषय की पकड़ में फंस नहीं पायेंगे और उससे बचकर निकल तो जायेंगे, परंतु सांख्य द्वारा निषेध करे बिना जड़ से नष्ट नहीं होता।

प्र. 4-142

✷ स्वामी ने सत्पुरुष की जो महिमा बताई वह बात–
वे बड़े हैं, भगवान से मिले हैं, भगवान की आज्ञा में वर्तते हैं, कसनी सहते हैं, भगवान इनके वश हैं, जो वे कहें वो भगवान करते हैं, वे कहें वैसे भगवान घूमते हैं, भगवान को उन्होंने जीता है, भगवान के अभिप्राय को जानने वाले हैं, मोक्ष के दाता हैं, उनका दर्शन भगवान के दर्शन तुल्य है, उनका पूजन भगवान के पूजन तुल्य है, गर्भवास, यमपुरी व चौरासी के दुःख से वे छुड़ाते हैं और अत्यंत दुर्लभ जो भगवान का अक्षरधाम है वहाँ हमें पहुँचाते हैं, भगवान के साधर्म्य की प्राप्ति कराते हैं, ऐसे वे बड़े हैं। उनके बिना भगवान को चलता नहीं, उनके दर्शन से पंच महापाप खाक हो जाते हैं, उनकी इन्द्रियों की क्रियाओं से ब्रह्मांड सचेतन होता है, उनसे काल, कर्म, माया थर-थर काँपते हैं, जैसे देह को पूजने से जीव का पूजन हो जाता है, वैसे ही इस साधु के पूजन से भगवान का पूजन हो जाता है, वे अन्नदाता हैं, अंतर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं, इनका किया होता है, वे मनुष्य जैसे दिखाई पड़ते हैं परंतु मनुष्य जैसे नहीं हैं, भगवान उनमें रहे हैं, अविनाशी धाम की प्राप्ति कराते हैं, कर्ता होते हुए भी अकर्ता हैं, वृक्ष की भाँति उनका देह दूसरों के लिए है, संत के जो लक्षण कहे गए हैं, वैसे वे हैं, 'कामिल, काबिल सब हुन्नर तेरे हाथ'–ऐसे समर्थ हैं, इस प्रकार महिमा समझने कहा है।

प्र. 4-143

प्रकरण-5

* भगवान मिलने के बाद करना यह है कि सावधान रहना तथा संग पहचानना और हठ, मान व ईर्ष्या छोड़नी।

प्रकरण : 5-1

* भगवान व एकांतिक में निश्चय हुए का लक्षण यह है कि जैसे घर में सौ करोड़ मन दाने हों व रुपया-पैसा हो, तो दुकाल पड़ने पर मरने का भय नहीं रहता है और दो हजार लठैत साथ में हों, तो लुट जाने का डर नहीं रहता; वैसे ही निश्चय वाले को काल, कर्म और माया का डर नहीं रहता और अपने आपको वह पूर्णकाम मानता है व भगवान के सिवा किसी की अपेक्षा नहीं रखता।

प्र. 5-2

* दिव्यभाव व मनुष्यभाव को एक समझे तो अवगुण नहीं आये। जैसे पील्लु भम्ररी का चिंतन करने से स्वयं भ्रमरी ही बन जाती है और लोहा पारस के संबंध से सोना बन जाता है व हीरे की परीक्षा जौहरी के संग से आती है व मिट्‌टी कुम्हार की कसनी सहती है, तब उसमें से बर्तन बनता है, वैसे ही भगवान व एकांतिक संत को पहचानने से ब्रह्मरूप हो पाते हैं और एकांतिक संत को पहचानने के बाद कुछ करना शेष नहीं रहता है।

प्र. 5-3

* भगवान व एकांतिक का संग, वही सत्संग है—इसके अलावा तो आधा-अधूरा सत्संग कहा जाये।

प्र. 5-4

* आत्यंतिक मोक्ष हो, वह ही मोक्ष कहा जाये और अन्य धाम में जाने पर तो गर्भवास में फिर से आना पड़ता है व जब तक गर्भवास में आना पड़े, तब तक मोक्ष हुआ नहीं कहा जा सकता। ऐसा मोक्ष तो प्रगट भगवान और प्रगट भगवान के एकांतिक संत का आसरा करने से हो पाता है; अन्य किसी के द्वारा नहीं हो सकता तथा संत तो भगवान जैसे समर्थ होते हैं।

प्र. 5-5

✷ छोटे बच्चों को जब डर लगता है तब वे माँ-बाप के गले से लिपट जाते हैं, उसी प्रकार हम पर कष्ट आने पर–विपत्ति के समय–भगवान तथा इस साधु के गले लिपट जाना चाहिए। वे रक्षा करेंगे ही।

फिर नत्थु पटेल ने पूछा कि गले से किस प्रकार लिपटा जाये? तब उत्तर दिया कि उन्हें याद करना और भगवान तथा इस साधु का जिसे संग मिला है, उस पर कोई विघ्न नहीं रहता क्योंकि उसकी तो भगवान रक्षा करते हैं। वहाँ घोड़ी का दृष्टांत दिया कि नदी में तेज बहाव आने के कारण सवार चार बार गिर गया और घोड़ी ने चारों बार मुड़ कर उस सवार को तार दिया, इस प्रकार रक्षा करते हैं।

प्र. 5-6

✷ गढडा वाले ठक्कर नारण प्रधान ने प्रश्न पूछा कि जिसे विषय में दोष का ख्याल नहीं आया हो उसके विषय किस प्रकार टलेंगे? तब उत्तर दिया कि समुद्र का जल वैसे तो सूख नहीं सकता, परंतु आत्यंतिक प्रलय होने पर सूख जाता है; उसी प्रकार यदि आत्यंतिक ज्ञान हो जाये तो विषय टल जाते हैं। वह आत्यंतिक ज्ञान तो इस साधु को पहचानना-वही है। उससे विषय टल जाते हैं और उसके बिना तो दोष का ध्यान करते-करते कई काल में टलते हैं। वहाँ गरुड़ का दृष्टांत दिया कि गरुड़ रह गया और चिड़िया पार उतर गई।

प्र. 5-7

✷ बोटाद में हरिशंकरभाई को बात करी–एक जानवर के कंकाल पर दो पक्षी बैठे थे। उनमें से एक पक्षी को उसमें थोड़ा-सा दोष का ख्याल पड़ने के कारण वह उड़ गया और एक पक्षी बैठा रहा। जो बैठा रहा था उसे समझ आने पर और उड़ जाने वाले पक्षी का गुण लेने से व अपने दोष का (कंकाल में आसक्ति का) ख्याल आने से मोक्ष हुआ और जो पक्षी उड़ गया था उसे कंकाल में वैसे आसक्ति तो रही ही थी, सो दोबारा जन्म लेना पड़ा।

प्र. 5-8

✷ श्रीजी महाराज ने हरिशंकरभाई को स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि निश्चय में कसर है इसलिए आपको यह जन्म दिलवाया है। सो निश्चय परिपक्व करना और आज्ञा पालना जिससे कि पूर्णकाम हो।

प्र. 5-9

✷ हरिशंकरभाई ने पूछा कि प्रगट भगवान और ये मूल साधु मिले हैं उससे स्वयं को पूर्णकाम मानना या वासना टल जाये तो मानना? तब उत्तर दिया कि निश्चय हो गया सो वासना टल चुकी, अतः पूर्णकाम मानना और आज्ञा

पालने की रुचि रखनी व विपरीत देशकाल के कारण यदि आज्ञा न पाल सके, तब भी उसे विघ्न नहीं है।

प्र. 5-10

✷ कई ऐसी बात करते हैं कि हमें देवलोक वग़ैरह में जाना रहा नहीं है, परंतु अल्प विषय में तो खींचे जाते हैं, उसका क्या कारण है और वह अक्षरधाम में जायेगा या नहीं?

इस प्रश्न का उत्तर दिया कि अज्ञान के कारण विषय में खींचे जाते हैं, परंतु प्रगट भगवान और इस साधु का दृढ़ आसरा है, सो वह अंत में अक्षरधाम में जायेगा। इस प्रकार का आसरा नहीं किया हो और ऐसी बात भले ही करता हो, परंतु वह अक्षरधाम में नहीं जायेगा। जिसके साथ उसकी प्रीति होगी, उसके धाम में जायेगा। वहाँ उदाहरण दिया कि गायकवाड़ का कुंवर चाहे मूली के लिए रोये, परंतु राजगद्दी तो उसी को ही मिलेगी।

प्र. 5-11

✷ ......जो अंतर पकड़े उसे भगवान कहते हैं। तब हरिशंकरभाई ने पूछा कि अंतर पकड़ा कैसे समझना? तब उत्तर दिया कि स्वयं की मूर्ति में जीव को खींच ले व उसका दोष जानकर उसी पर बातें करके दोष टाल दें–वह अंतर पकड़ा कहा जाता है।

प्र. 5-12

✷ भगवान हमारी घरवाली को जबरदस्ती ले जायें व हमारे लड़के को भी ले जायें और तब भी भगवान में दोष ना देखें, उसे स्वरूप का ज्ञान हुआ जानना व ऐसे का मोक्ष हो चुका है।

प्र. 5-13

✷ शुकमुनिजी ने सूरत में बात की थी कि गुणातीतानंदस्वामी बातें करते हैं उससे महाराज की बातों जैसा समाधान होता है।

प्र. 5-14

✷ 'भोगावा' नदी के किनारे गर्मी में कोई तप करता हो, वह नर्क में जाये, परंतु भगवान का आसरा हो और उसे चाहे सात लड़के हों–अर्थात् गृहस्थी हो तब भी उसका परिवार समेत मोक्ष होता है। यह बात सभी को समझ में नहीं आयेगी।

प्र. 5-15

✷ अधिक जनों के शब्द सुनने पर दुविधा होती है और बुद्धि में शंका होती है। सो ज्यादा शब्द सुनने नहीं।

प्र. 5-16

✷ नामी के बिना केवल नाम जपने से काम नहीं होता। नाम वह फूल है और नामी वह फल है।

प्र. 5-17

✷ 'जहाँ पहरा हो वहाँ कोई आ नहीं सकता'—इस उदाहरण का अर्थ यह है कि माहात्म्य जानकर बड़े साधु के संग जीव जोड़ दिया हो तो साधु से उसे यदि दूर जाना भी पड़े, तब भी उस साधु की मर्जी के विरुद्ध विषय भोग नहीं पायेगा और विषय उसे काबू नहीं कर पायेंगे।

प्र. 5-18

✷ बड़े साधु के समागम से विषय टल चुके हैं, फिर भी लगता रहता है कि टले नहीं हैं उसका कारण यह है कि तलवार में यदि थोड़ा जंग लग गया हो तो पत्थर पर घिसने से उतर जाता है, परंतु यदि बहुत अधिक जंग लग गया हो तो वह हटता नहीं है। वह तो दोबारा तलवार के लोहे को पूरा गलाया जाए तब मिटता है। वैसे इस जीव में विषय के जो धब्बे पड़ गए हैं, वह तो देहभाव छोड़ कर ब्रह्मरूप होंगे तब टल जायेंगे।

प्र. 5-19

✷ ये साधु तो हमेशा भगवान के हुजूर में रहने वाले हैं, उनसे पलभर भी दूर रहें ऐसा नहीं है और तब भी रहे हैं, वह तो जीव के कल्याण के कारण रहे हैं तथा इस समय जो बातें होती हैं वैसी बातें दूसरे साधु सारे जन्म में भी नहीं कर सकते—करनी आएगी भी नहीं व सारे जन्म तक कोशिश करें तब भी ऐसी बातें करनी सीख नहीं पायेंगे।

प्र. 5-20

✷ भगवान व इस साधु का जिसे ज्ञान हुआ है, उसे कुछ करना शेष रहा नहीं है। वह तो यहाँ है तब भी अक्षरधाम में ही बैठा है। इसलिए पाँच माला ज्यादा या कम फिरेगी उसकी चिंता नहीं है। वह तो शक्ति के मुताबिक करनी, लेकिन भगवान और इस साधु—इन दोनों को ही जीव में रखना और हमें बड़प्पन साधन के बल से नहीं है, बल्कि उपासना के बल से है।

प्र. 5-21

✷ भगवान की आज्ञा से कोई प्रवृत्ति में जुड़ जाये, तो वह उसमें बंध तो जायेगा, लेकिन आज्ञा पालने से प्रसन्नता मिलती है। वहाँ दृष्टांत दिया कि राजा की आज्ञा से सिपाही कुएँ में सात बार उतरा और भीग कर बाहर आया; फिर भी, राजा ने इनाम में गाँव दिया।

प्र. 5-22

✷ निवृत्ति में रहने से इन्द्रियों की शुद्धि होती है और जीव की भी शुद्धि होती है। ऐसी प्रवृत्ति मार्ग में होती नहीं। सो विषयों के भोग से संकोच करना।

प्र. 5-23

✷ प्रगट भगवान का संबंध होने से और उसे निर्दोष समझने से मोक्ष हो चुका है और दोष रहे हैं उन्हें टालने की कोशिश करें तो टलें, वर्ना देह रहे तब तक उसका कष्ट रहेगा और भगवान का निश्चय है, सो देह छोड़ने पर भगवान के धाम को पायेगा....

प्र. 5-24

✷ स्वामी ने बात करी कि मक्खी में से सूर्य करना, इतना परिश्रम—तो भगवान जैसा हो उससे ही हो पाएगा, दूसरे से नहीं होगा।

प्र. 5-25

✷ सत्संग से भगवान जितने वश होते हैं, उतने दूसरे किसी साधन से नहीं होते। वह सत्संग का अर्थ यह है कि भगवान और संत के प्रति जितना सद्भाव—उतना सत्संग है। वह होना कठिन है।

प्र. 5-26

✷ निष्कुलानंदस्वामी को महाराज ने पूछा कि संतदासजी बड़े या मुक्तानंदस्वामी बड़े? तब निष्कुलानंदस्वामी ने कहा कि संतदासजी सिद्धदशा को पाए हुए हैं, सो वे बड़े।

तब महाराज ने कहा कि—संतदासजी की तरक्की होनी बंद हुई और मुक्तानंदस्वामी की बढ़ोत्तरी होती है, इसलिए वे बड़े।

वहाँ दृष्टांत दिया कि हवेली में बहुत खर्च करे तो दो लाख रुपये खर्च होएँ, इससे अधिक नहीं होंगे और खेडा के कैंप में दस लाख रुपये का खर्च हुआ है व दस लाख रुपये की नींव डाली है और उसकी कीमत बढ़ती जा रही है। वैसे ही संतदासजी हवेली जैसे व मुक्तानंदस्वामी खेडा के कैंप जैसे हैं। इस प्रकार महिमा समझनी।

प्र. 5-27

✷ गोपाळानंदस्वामी की कही बात करी कि—'मेरे ज्ञान को दो जने पाए; बाल मुकुंदानंदस्वामी तथा सर्वनिवासानंदस्वामी और मेरा सत्संग तो गढडा के पास की नदी के झरने जैसा है। आकाश से बारिश का बल हो, तब तक उसमें बल रहे। यूं सत्संग से समागम का बल हो तब तक ठीक रहे और उसके बिना तो संभले ही नहीं।'

प्र. 5-28

✷ सत्संग करने पर पहले विवेक आता है, जिससे सत्य-असत्य का ज्ञान होता है, उसके बाद विमोक आता है, जिससे स्त्री आदि की इच्छा टल जाती है। फिर वर्तना आता है–मतलब, सत्संग की रीत के मुताबिक सबसे मिलजुल कर क्रिया करनी आती है। उसके बाद खुद का स्वरूप सबसे परे ऐसा ब्रह्मरूप माना जाए। फिर भगवान वश होते हैं। उसके बाद जैसे जीव देह की रक्षा करता है, स्त्री पति की सेवा करती है यूँ भगवान सर्व प्रकार से रक्षा करते हैं।

प्र. 5-29

✷ जिसका समागम पाने की प्रार्थना करते हैं, उसका समागम भगवान ने हमें साक्षात् दिया है।

प्र. 5-30

✷ पंच महापाप करने वाले के लिए शास्त्रों में प्रायश्चित बताया नहीं है; परंतु वह इस सभा के दर्शन करे, तो उसके पाप टल जाएं। क्योंकि इस सभा में भगवान हैं, साधु है, सब कुछ है।

प्र. 5-31

✷ पुरुषोत्तम के साथ अक्षर मूर्तिमान आए हैं, परंतु पहचाने नहीं जाते। इस सभा में वे हैं यूँ कहें तो माना नहीं जायेगा। सो, अपने आप यह कहने की रीत नहीं; उनके मुक्त के कहने से निश्चय होता है।

प्र. 5-32

✷ कुठार में हरिशंकरभाई को बात करी कि आज सुबह की सभा में बहुत अच्छी बातें हुईं। वह क्यों? कि–सभा में भगवान आए थे ! अभी मानो किसी को समझ नहीं आता होगा, तो आगे समझ में आएगा। चींचड़ी आंचल में रहती है, तब भी खून पाती है व बछड़ा गाय से दूर रहता है फिर भी दूध पाता है।

प्र. 5-33

✷ हमें तो जीव को भगवान के बिना और कहीं पर जोड़ना नहीं है और तुम्हें प्रवृत्ति में से छुड़वा कर सुख से भजन कराऊँगा। हरिशंकरभाई ने कहा कि आप तो अंतर्यामी हो, सो आपके पास प्रार्थना तो करनी रहती नहीं है।
तब उत्तर दिया कि अंतर्यामी के पास भी जो पूछना हो वह पूछना चाहिए और कहा कि यहाँ भी भगवान के धाम जैसा ही सुख आप मानना। तुम्हारा पूर्व का संस्कार बलवान है, सो भजन किया करना।
वड़ताल में सभी मेरे में खींचे गए व कईओं ने धोती ओढ़ाई और मैं तो महाराज की मूर्ति को देखता रहा।

प्र. 5-36

✷ ये जीव सभी अच्छे हैं लेकिन अखंड चिंतन नहीं होता, इसका कारण यह है कि अभ्यास नहीं किया—आदत नहीं डाली। अभ्यास करने से होगा।
प्र. 5-37

✷ अंतर्यामी के पास मन की चोरी रखे, वह मूर्ख कहा जाये। सत्पुरुष का सेवन करने का अर्थ बताया कि उसके पास हाथ जोड़ना और मर्जी में रहना व महिमा समझनी; तो कोई कसर नहीं रहेगी।
प्र. 5-38

✷ गोंडल में हरिशंकरभाई के प्रश्न का उत्तर दिया कि तुम्हें गोपाळानंदस्वामी, कृपानंदस्वामी तथा फिलहाल जो बड़े साधु हैं उनके साथ लगाव है, सो भजन करा करना, प्रश्न पूछने की जरूरत नहीं है।
प्र. 5-39

✷ सभी अच्छे गुण अभ्यास से तथा संग से आते हैं। परंतु, भगवान की व साधु की निष्ठा—वह तो पूर्व संस्कार से और सत्पुरुष के अनुग्रह से होती है। जितना सत्पुरुष के समागम में रहा जाए, उतना उसका संस्कार और अनुग्रह समझना और जिसने जितनी निष्ठा कराई—फैलाई उतना उसका बड़प्पन समझना।
प्र. 5-40

✷ पूर्व के संस्कार हों, लेकिन घटिया संग मिले तो संस्कार टल जाएं और सौ जन्म लेने पर अच्छा होने वाला हो, उसे बढ़िया संग मिल जाए तो तुरंत अच्छा हो जाए।
प्र. 5-41

✷ सत्पुरुष ने हर एक प्रकार से सुख दिया हो, पहले भगवान ने दिया हो और बहुत महिमा समझ में आई हो, फिर भी इधर-उधर कहते नहीं फिरना और किसी को कहना भी, तो सोलह आने में से एक आना कहना।
प्र. 5-42

✷ शुकजी ने परीक्षित को कहा कि—मैं राजा हूँ व मुझे ब्राह्मण से शाप हुआ है और मुझे सांप का डंक लगेगा—ऐसी जो तेरी पशुबुद्धि है, उसका त्याग करके गर्भ में जिसने तेरी रक्षा करी है, उस भगवान को याद कर। सारी भागवत का निचोड़ इतनी बात में है।
प्र. 5-43

✷ भगवान का जिसे एक बार दर्शन होता है उसके पुण्य का पार नहीं। भगवान के सिवा दूसरी बात सुननी नहीं व भगवान का जोग अत्यंत भारी हुआ है।

भगवान की मूर्ति में सारे जीव खिंचे जाते हैं। ज्ञानी को प्रीति रहती है व अज्ञानी की छूट जाती है।

प्र. 5-44

✷ जूतों से जैसे गोबर चिपक गया हो ऐसा यह लोक है। कंकड़ों वाली जमीन पर चलने लगे हैं, सो थोड़े समय में घिस कर निकल जाएगा।

प्र. 5-45

✷ गुरु मिलने के बाद यदि शिष्य को गर्भवास वग़ैरह के दुःख का त्रास नहीं मिटा है, तो वह गुरु ही नहीं है।

प्र. 5-46

✷ मनधारी भजन-भक्ति वग़ैरह करते हैं, उससे अंतर में शांति नहीं होती, लेकिन भगवान और साधु के कहे मुताबिक करें तो शांति होती है।

प्र. 5-47

✷ फिलहाल भगवान का खूब अनुग्रह है। वह क्या कि–जबरदस्ती भजन करवाते हैं, नियम पलवाते हैं और बातें सुनाते हैं। ऐसे साधु मिले हैं।

प्र. 5-48

✷ यूं समागम करते रहने से भगवान में लगाव होने पर या ज्ञान होने पर इस देह में से और लोक में से उखड़ पायेंगे।

प्र. 5-49

✷ स्पर्श आदि उत्तम विषय पहले अच्छे लगते हैं, परंतु फिर दुःख होता है। या ज्ञानी सुखी है या तो किसी का कहा माने वह सुखी है....

प्र. 5-50

✷ बहुत जीवों को मोक्ष के मार्ग पर ले जाने हैं, सो नियम धर्म की बात खूब हुआ करती है और माहात्म्य की बातें ज्यादा नहीं होती है। महाराज ने माहात्म्य की खूब बातें करीं, तो कुपात्र जीवों ने धर्म की मर्यादाएं छोड़ दीं। सो महाराज ने स्वयं ही माहात्म्य की बातों के ऊपर सेरे लगा दिए। वास्तव में तो माहात्म्य जानने से ही शांति है। पर, जीव की पात्रता नहीं है, सो माहात्म्य की बातें नहीं करते।

प्र. 5-51

✷ देह, इन्द्रियाँ मायिक हैं और पदार्थ भी मायिक हैं। सो वे सजातीय हुए, अतः देह उसमें चिपकेगा। पूर्व का संस्कार हो, तो नहीं चिपकेगा।

प्र. 5-52

✷ ...कलियुग में तमोगुण, रजोगुण का प्रभाव अधिक है, इसलिए कीर्तन गाना व भजन करना ताकि तमोगुण हावी ना हो सके। भजन यूँ करना कि जैसे दो हज़ार घोड़ों की टापों की आवाज होती हो तो उसमें से कोई सीधा निकल न सके, वैसे खूब तेजी से भजन करना जिससे कि संकल्प भीतर में घुस ही नहीं पायें।

प्र. 5-53

✷ यह जान लेना कि स्पर्श और स्वाद में तो जीव चिपके ही हैं। यदि कोई चिपकता नहीं दिखाई पड़ता, तो उसका पूर्व का संस्कार है और यह मार्ग तो नीचे की ओर जाती पानी की धारा के प्रवाह को ऊपर चढ़ाने जैसा है।

प्र. 5-55

✷ राजा की शरण में जो चला जाए उसके गुनाह राजा माफ कर देता है, यूं भगवान जीव के गुनाह माफ करते हैं। लेकिन जीव ऐसा टेढ़ा है कि स्वयं को खूब बड़ा मान कर भगवान की शरण में नहीं जाता है और भगवान तो दिन के दूसरे पहर चढ़ने तक जीव के गुनाह माफ करते रहते हैं।

प्र. 5-56

✷ शिवजी के गले में रह कर साँप गरुड़ के सामने फुंकार मारने लगा, तब गरुड़ ने कहा कि यह तेरी ताकत नहीं है, बल्कि शिवजी का बल है; सो मेरा जोर चलता नहीं है। इसी प्रकार हम पर दुःख आए तो भगवान तथा साधु से लिपट जाना; जिससे काल, कर्म, माया किसी का बल चले नहीं।

प्र. 5-60

✷ जिसे भगवान भजने हो उससे सभी की मर्जी नहीं संभाली जायेगी। उसे तो भगवान की मर्जी ही संभाली जा सकती है।

प्र. 5-62

✷ भगवान के एकांतिक साधु जिसके घर भिक्षा माँगने जायें, उसका घर तीर्थरूप हो गया समझ लो और सभी तीर्थ यात्रा कर आने का उसे फल मिलता है व उसी समय यदि उसका देह छूट जाये, तो वह भगवान के धाम को पाता है, ऐसा माहात्म्य है। उस भगवान को हमने पाया, सो हम तो स्वयं ही तीर्थरूप हो गये हैं और फिलहाल के हरिभक्तों एवं साधु में जो सामर्थ्य है, उतनी तो पहले हुए अवतारों में नहीं है.....

प्र. 5-63

✷ 'साधु का द्रोह' यूँ समझना कि–सबसे बड़े साधु हों उन्हें दूसरों जैसा कहना या उनसे न्यून कहने से साधु का द्रोह होता है।

जैसी बातें अब समझ में आई हैं, वैसी कभी समझे नहीं थे। आज तो भगवान हैं, साधु हैं, सभी यहीं हैं। उसके स्वरूप का प्रभाव समझ नहीं पाते वही बड़ा पाप है। फिलहाल तो भगवान अक्षरधाम सहित यहाँ हैं। सो यादवों की भाँति नहीं रहना, उद्धवजी जैसा भक्त बनना। ऐसे के ऐसे अक्षरधाम में से आये हैं ऐसा प्रभाव अखंड रहे तो अहो ! अहो ! ही होता रहे, परंतु साधु को वे जैसे हैं वैसे पहचाने नहीं गए हैं ! इस प्रकार मर्म की खूब बातें करीं।

प्र. 5-64

✷ अक्षरधाम में भगवान जैसे हैं वैसे के वैसे ही आये हैं। उनमें बाल, यौवन और वृद्धावस्था–ऐसा मनुष्यभाव नहीं और मृत्यु भी नहीं है। मनुष्यभाव जो दिखाई पड़ता है, वह तो नट के खेल की भाँति है।

प्र. 5-69

✷ गाँधारी आँखों पर पट्टी बाँधे रखती थी, तब भी वह सती नहीं कही जाती और कुन्ती को कुँवारी होते हुए पुत्र हुआ था व द्रौपदी के पाँच पति थे तब भी वे सती कहलाई गईं हैं।

प्र. 5-78

✷ जगत के मनुष्य की और सत्संगी की क्रिया एक जैसी ही लगेगी, परंतु सत्संगी भगवान के कहे जाते हैं, सो मोक्ष होता है।

प्र. 5-80

✷ अपने सत्संग की रीत समझनी कि सत्संग में रामानंदस्वामी, मुक्तानंदस्वामी, नित्यानंदस्वामी, ब्रह्मानंदस्वामी, गोपाळानंदस्वामी आदि जो कई साधु और कई बड़े हरिभक्त हो गए, उनको साथ में लेकर हमारी महिमा गाना। उनको छोड़कर यदि कहोगे, तो हमारी अपकीर्ति कराओगे और ये सब जो बड़े थे, वे मनुष्य जैसे नहीं कहे जाएं। वे यदि नहीं होते तो इतना सत्संग भी हमें कहाँ से हो पाता? सो वे सब बड़े हैं।

प्र. 5-82

✷ ध्यानी, प्रेमी इन सब से ज्ञानी श्रेष्ठ है। कितने ही प्रेमी चले गए, त्यागी चले गए, ध्यानी चले गए। यूँ कई भिन्न-भिन्न अंग वाले चले गए, परंतु जिन्होंने बड़े साधु से जी जोड़ा, वे टिक गये।

प्र. 5-83

✷ सत्संग, एकांतिकभाव व भगवान की मूर्ति–ये तीन चीजें दुर्लभ हैं। वे हमें मिली हैं। सो गरीब होकर दूसरों को मान देकर संभाल रखना।

प्र. 5-86

✷ गरीब होने की रीत बताई कि–एक गाँव में दो भाई बनिये थे। उन दोनों के पास चिंतामणि थी। राजा को पता चलने पर उसने सेना भेज कर एक को जीत कर चिंतामणि ले ली। दूसरा भाई चिंतामणि छिपाए रख कर–फटे चीथड़े पहन कर गरीब-सा होकर, भीख माँगता बच निकला ! तो उसके पास चिंतामणि बची रही। यूँ गरीब होकर हम चिंतामणि संभाल कर रखें।

प्र. 5-87

✷ भगवान सत्संग से जैसे वश होते हैं वैसे और कोई साधन से नहीं होते। वह सत्संग क्या? तो, प्रगट भगवान व प्रगट इस साधु का आसरा करने से कल्याण होता है। परोक्ष कथा, कीर्तन, वार्ता और पूजा आदि से कल्याण होता है ऐसा शास्त्रों में लिखा है, वह तो जीव को आलंबन–आधार दिया है।

प्र. 5-88

✷ एक को तो भीतर में क्लेश होता है और एक को नहीं होता–उसका क्या समझना? तब स्वामी बोले कि घर में सांप हो और जब तक उसे चूहे खाने को मिलते रहें, तब तक वह खीझता नहीं है और चूहों को बाहर निकाल दें, तो वह सांप घर के दूसरे जनों को काट खाता है। यूँ ही मन तथा इन्द्रियों के ढंग से चलें तब तक कोई परेशानी नहीं होती, पर उन्हें मरोड़ कर चलें तो परेशानी होती है।

प्र. 5-89

✷ महुआ के हरिभक्त ने पूछा कि पूरा सत्संग हुआ कैसे समझना? तब स्वामी बोले कि अक्षररूप हो जाये तब पूरा सत्संग हुआ समझना। फिर पूछा कि अक्षररूप हुए कैसे समझा जाये? तब स्वामी ने कहा गृहस्थ ग्यारह नियम और त्यागी तीन ग्रंथ–इतना पाले तो अक्षररूप हुए जानना।

प्र. 5-90

✷ ....उद्धवजी तथा गोपियों की बात करी और प्रगट स्वरूप के ज्ञानी को अधिक कहा है व प्रथम के इक्कतरवें वचनामृत की बात करी कि प्रगट की बात किए बिना तो यूं समझा जायेगा कि बद्रिकाश्रम–श्वेतद्वीप व गोलोक में जो भगवान हैं, उसमें से थोड़े यहां हैं। परंतु सर्वोपरि भगवान यहां माने नहीं जाते। इसलिए प्रगट की बातें करते हैं और ऐसा समागम मिलने पर भी अहो ! अहो ! नहीं होता है तथा पागल नहीं हो जाते हैं, वह तो भगवान ने जीव के कल्याण के लिए ऐसा रखा हुआ है, वर्ना पागल हो जाते।

प्र. 5-93

✷ माया का रूप यह है कि भगवान का स्वरूप नहीं पहचाना जाये–वह ही माया है। फिर हरिशंकरभाई ने पूछा कि किसी को तो कान में शब्द पड़ने पर तुरंत निश्चय होता है उसका क्या कारण है? तब बोले कि संस्कार हैं, वर्ना तो साथ में रहते हैं तब भी नहीं पहचानते हैं और यह साधु भगवान का अंग है, विभूति है; तब भी जूनागढ़ में दर-दर भिक्षा माँगते हैं और दर्शन देते हैं।जो नहीं पहचानते वो तो यादवों जैसे अभागे हैं।

प्र. 5-96

✷ कोई शांत स्वभाव हो और कोई ना हो। किसी को विनय करना आता हो और किसी को ना आये। ये सब देह के भाव समझना और बड़प्पन तो प्रगट भगवान के निश्चय से है। लिखे गये हैं इतने सब गुण तो भगवान में ही होते हैं, दूसरे में नहीं हो सकते।

प्र. 5-97

✷ ज्ञानी को आत्मा कहा है। सो, भगवान को जीव सौंप देना और वे जैसा कहें वैसा ही करना। फिर, मनजीभाई ने पूछा कि जीव सौंपने के बाद वासना टालनी पड़ती है या नहीं? तब बोले कि वासना टालनी पड़ती है और यूं उत्तर न करें, तो भगवान में दोष आए कि एक की वासना टालते हैं और एक की नहीं टालते। इसलिए ऐसा कहा नहीं जाये। आत्मनिष्ठा तथा माहात्म्य से वासना टलती है।

प्र. 5-98

✷ फिर मनजीभाई ने पूछा कि ज्ञानी को भी वासना रहती होगी क्या ? स्वामी ने कहा कि शुकजी उड़े और जनकजी नहीं उड़ पाये। प्रवृत्ति का योग हो तब तक (वह) महसूस तो होगी। जैसे कि हम त्यागी हुए उन दिनों गांव, नदी सब कुछ ख्याल में आता था; तो क्या वह वासना थी? वह तो जोग के कारण दिखाई देता था और बीस साल का जब फासला पड़ा तो दिखाई नहीं पड़ता। यूँ प्रवृत्ति में ज्ञान वृद्धि को पाता है, अंतःकरण शुद्ध होता है, लेकिन जोग के कारण इंद्रियों की शुद्धि नहीं होती।

फिर नत्थु पटेल ने पूछा की प्राप्ति में कुछ फर्क है क्या? स्वामी ने कहा– प्राप्ति में कुछ फर्क नहीं, बराबर की है। निवृत्ति वाले को इतना बढ़ कर न बताया जाये, वह तुम (निष्ठा वाले) मानोगे, पर दूसरे नहीं मानेंगे। इसलिए यूँ उत्तर करना पड़े, लेकिन भगवान तो चाहे सो करें; उसका कोई मालिक थोड़ा है? उत्तर तो जैसा होता हो, वैसा देना पड़ता है।

प्र. 5-99

* गृहस्थाश्रम में रह कर कथावार्ता करते हैं और सुनते हैं उसके तो त्रिविध ताप टल गए हैं। उसने तो मानो सब तप कर लिये हैं और भगवान की शरण को पा चुका है–ऐसा कपिलदेव भगवान ने भागवत में कहा है। गृहस्थाश्रम में प्रवृत्ति बहुत और बाधायें बहुत; सो उसे अधिक कहा है। जिसे भगवान की मूर्ति धार कर रखे हुए साधु का आसरा है, वह तो घर में रहते हुए सभी तीर्थ कर रहा है।

प्र. 5-100

* हरिशंकरभाई ने पूछा कि–लोक में तो यूं कहते हैं कि ये तो निंदा बहुत करते हैं और चालाकी से बोलते हैं, सो अकल्याण होगा। उसका क्या समझना? तब कहा कि–यूं बोलने से ही तो कल्याण होता है। यह तो भगवान की करामात है। उस पर बात करी कि–रामानंदस्वामी ने संन्यासी को पूछा कि वेद कितने? तब संन्यासी ने कहा चार। फिर रामानंदस्वामी ने कहा–ब्रह्मज्ञ को पांचवा वेद कहा है, वह मैं हूँ। यूं सच्ची बात करी, तो संन्यासी चला गया और महाराज ने घुमा-फिरा कर बात करी, तो सारे देश में सत्संग हुआ। रामानंदस्वामी के अंतर्धान होने के बाद व्यापकानंदस्वामी वग़ैरह को युक्ति से स्वयं के स्वरूप की पहचान कराकर सत्संग में रखा।

प्र. 5-101

* गांव में किला होता है, वैसे हमारे लिए पंचप्रणरूपी किला है। उसमें पुलिस थाने के स्थान पर नियम हैं। जैसे थाना किले को संभालता है, यूं नियम प्रण को संभालते हैं। इसलिए नियम में जितने ढीले पड़ेंगे, उतने सुराख हुए समझना।

प्र. 5-102

* दिव्यभाव और मनुष्यभाव एक हो जाएं, तब भगवान भजने का सुख आता है।

प्र. 5-103

* समाधि में स्वरूप दिखाई देता है, वह कार्य है और प्रगट मनुष्यरूप में जो है वह कारण है।

प्र. 5-104

* भगवान स्त्री को भोगते हों, तब रजोगुण का भाग समझना और तलवार चलाते हों तब तमोगुण का भाग समझना। पर, भगवान के स्वरूप को न्यारा ही समझना वह ज्ञान का अंग है। जीव में भी यूं विभाग समझना।

प्र. 5-105

✷ आत्मनिष्ठा कि—मैं देह से अलग हूँ और देह की क्रिया मेरी नहीं है तथा भगवान का माहात्म्य व संग इन तीन से वासना निर्मूल होती है।

प्र. 5-106

✷ भजन, भक्ति और कथावार्ता में सहायता हो इस कारण गौणरूप से मंदिर की क्रिया करने का महाराज का रहस्य है। पर, क्रिया प्रधान हो गई है। वो तो महाराज से मिले नहीं होंगे तभी राजा द्वारा, आचार्य और मूर्ति द्वारा रक्षा करेंगे।

प्र. 5-107

✷ उपासना, नियम तथा भक्ति में जितनी कसर रहेगी, इतनी खोट आयेगी। धन देने वाला मिल जाये, लड़का देने वाला मिल जाये या देह की बीमारी मिटाने वाला मिल जाये उससे उपासना में फर्क पड़ जाता है।

प्र. 5-108

✷ जगत में दान, पुण्य, सदाव्रत बहुत करते हैं, लेकिन द्रौपदी के चीर और विदुर की भाजी व सुदामा के चावल—इतने ही लिखे गये ! भगवान तो अधर्मी का भी उद्धार करने वाले हैं, पतित पावन हैं और अशरण शरण हैं; लेकिन भगवान का आसरा करे तो ! इस पर अजामेल व वेश्या की नियम रखने की बात करी ! यूं आधार बिना दृढ़ता रहती नहीं है। आधार क्या? तो—कुएँ में डूब रहे हों, तब यदि पेड़ की कोई टहनी हाथ में आ जाये तो डूबेंगे नहीं—ऐसी जो दृढ़ता रहती है; यूं प्रगट मूर्ति के आधार से मोक्ष की दृढ़ता रहती है। उस पर इन्द्र की बात करी कि नारदजी के वचन से अपने भाई वामनजी को भगवान जान कर उनका ध्यान करा, तो चार ब्रह्महत्या का पाप टला। प्रगट सूर्य से उजाला होता है, प्रगट जल से गंदगी धुलती है और प्रगट चिंतामणि से द्रव्य की खोट टलती है। वैसे ही प्रगट भगवान मिलने से मोक्ष होता है।

प्र. 5-109

✷ महाराज को जब भी देखें तब बातें करते ही दिखाई पड़ते थे। ज्ञानी, प्रीति वाला व दासभाव ये तीन अंग हैं। इसमें ज्ञानी श्रेष्ठ है। स्तुति-निंदा का वचनामृत पढ़वाया व कहा कि प्रगट मूर्ति के सिवा दूसरे आधार जो हैं, वह तो हिम्मत देने के लिए हैं.... प्रगट मूर्ति का जिसे आसरा हुआ है उसके हाथ सभी मुद्दे आ गए हैं। उसे तो कुछ करना रहा नहीं है और काल, कर्म, माया से परे हुआ है। उस पर बात करी कि बकरी को शेर की सहायता मिली हुई थी, तो बकरी का कोई नाम नहीं दे सका.... यूं प्रगट भगवान और प्रगट साधु की सहायता के कारण काल, कर्म, माया कोई हमारा नाम नहीं ले सकते।

प्र. 5-110

✷ मावाभाई ने महाराज को माया का बंधन न हो—यह पूछा, परंतु व्यवहार का कुछ नहीं पूछा। सो, महाराज ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हें माया का बंधन नहीं होगा और झीणाभाई ने भी सेवा की माँग करी।

प्र. 5-114

✷ पशु, मनुष्य, वृक्ष सभी में कामवासना का विषय है। वह किसी से छूटता नहीं है, वह तो हृदय ग्रंथि है। इसलिए 'निजात्मानं ब्रह्मरूपं' यूं स्वयं का रूप मानना वह बात अलग पड़ती है। जैसे भीमनाथ की दूसरी ओर खोदें तो पानी आए, परंतु पत्थर आए नहीं और इस ओर पहले घाव में ही पत्थर आते हैं, वैसे ही ब्रह्मरूप मानने में कोई कठिनाई स्पर्श नहीं करती ! यह महाराज का दृढ़ रहस्य है।

प्र. 5-115

✷ हरिशंकरभाई ने पूछा कि मावाभाई पर भगवान जैसे प्रसन्न हैं वैसे किस तरह भगवान प्रसन्न हों? तब स्वामी बोले कि आज तो भगवान प्रसन्न हुए हैं, सो आज्ञा पालनी। दूसरा कोई साधन करना रहा नहीं है। पाँच प्रण दृढ़ पालने।

प्र. 5-116

✷ अंतिम प्रकरण का दूसरा वचनामृत पढ़वा कर बात करी कि महाराज के बिना अन्य में माल मानता हो व और कुछ देखने की इच्छा रखता हो वह तो सूर्य के आगे दीया करे ऐसा है और वह सत्संगी ही कहां है? उस पर कुम्हार के लड़के ने जो महिमा कही थी वह बात करी। यह बात जब समझ में आएगी तब पागल हो जाएंगे। पागल नहीं होते वह तो भगवान की इच्छा है। एकांतिक का संग मिलना दुर्लभ है। भगवान से काम हो उतना उससे (एकांतिक से) होता है, क्योंकि सभी को भगवान का संबंध नहीं रहता। इसलिए एकांतिक का लक्षण समझना....

....अभी तो जोग है तब तक ख्याल नहीं पड़ता, परंतु जोग नहीं होगा, तब काल आने पर जैसा दुःख होता है वैसा जीव को दुःख होगा और आँखों से आँसू बहेंगे.... ऐसा जोग मिला है वह पूर्व का पुण्य है.... भगवतप्रसादजी महाराज को काग़ज़ में लिखवाया कि जो काम करो उसके मालिक नहीं बनना, भगवान के माथे पर डाल देना और भगवान का विश्वास रखना।

प्र. 5-117

✷ जो भगवान के भक्त बने हैं और पंचवर्तमान पालते हैं वे तो प्रकृति पुरुष से पर जा कर बैठे हैं।

प्र. 5-118

✷ प्रगट भगवान को पहचान कर जो एक प्रणाम करता है, वह आत्यंतिक मोक्ष-जो अक्षरधाम है उसे पाता है। उसके सिवा तो बाकी सभी धाम को काल खा जाता है। गायकवाड़ सरकार के घर जन्म लिया हो और मूली-मोगरी के लिए भले ही रोता है, पर गद्दी का मालिक तो बन चुका ही है। अधिक बात क्या कहें?

प्र. 5-119

✷ अंतिम प्रकरण का पैंतीसवाँ वचनामृत पढ़वा कर बात करी कि यदि भगवान के प्रति मनुष्यभाव रह जाए तो कल्याण नहीं होगा। इसलिए महाराज ने बार-बार दिव्यभाव और मनुष्यभाव इन दोनों को एक समझने की बातें करी हैं और फिलहाल रात को गढडा वाले नारायण प्रधान जो पढ़ते हैं उसमें बहुत अच्छी बातें आती हैं। वह जो सुनेगा उसे खूब लाभ होगा और दूसरों को खोट रहेगी।

प्र. 5-120

✷ सत्त्वगुण में यूं सोचना कि इस साधु से ही मेरा मोक्ष हो पायेगा, इसलिए चाहे कितना ही दुःख आ पड़े तो भी उसका संग छोड़ना नहीं है।

प्र. 5-121

✷ जीव और देह का व्यवहार पृथक समझना और यूं न समझे तो ऐसी भव्य प्राप्ति होने के बावजूद भी दुर्बलता-हीनता रहा करेगी। भगवान की आज्ञा से गृहस्थाश्रम करे तो भी निर्बंध है।

प्र. 5-123

✷ एक हरिभक्त को रोग मिटाने के लिए गोपाळानंदस्वामी ने नीम का रस पीने को कहा। इससे रोग तो मिट गया, लेकिन नीम का बंधन ऐसा लग गया कि न पीये तो बुखार आ जाए ! फिर धीरे-धीरे कम करने पर वह बंधन टला। यूं हमें यह लोक लिपटा है, उसे ऐसे ही टालना। जैसे कि मंदिर आना और घर जाना व घर का काम बच्चों पर डाल देना। यूं अभ्यास करने से—आदत डालने से टल जायेगा।

प्र. 5-124

✷ हरिशंकरभाई के पूछने से बात करी कि सर्वज्ञ तो भगवान हैं और दूसरे तो अल्पज्ञ हैं। सो, पतिव्रता की दृढ़ता रखनी तथा ध्यान भगवान का करना व बहुत बड़े साधु की दिल की सच्चाई से कोई सेवा करे तो साधु उसे भगवान से मिला दे।

प्र. 5-125

✷ बड़े को यदि कोई बात किसी को समझानी हो, तब और किसी के पास भेज कर उससे बात करा कर समझाते हैं, लेकिन स्वयं नहीं कहते। गोपालस्वामी मेरे से बात करा के समझाते थे। ऐसी बड़ों की रीत है और फिर स्वयं उसका प्रमाण कर देते हैं।

प्र. 5-127

✷ पंचाला का सातवाँ वचनामृत पढ़वा कर स्वामी ने बात करी कि इस प्रगट भगवान को निर्दोष समझने पर कुछ करना बाकी नहीं रहता है और चमत्कार दिखाई पड़े तो शेखजी की तरह झेला नहीं जाये, पागल हो जाएं ! इसलिए कसर जैसी रखी है। भगवान को निर्दोष समझने से स्वयं निर्दोष हो चुके हैं और दोष जो दिखाई पड़ते हैं वह तत्त्व के दोष हैं। निर्दोष तो एक भगवान ही हैं। विपरीत माहौल तो भगवान को नहीं छूता, जीव को तो छूता है। क्योंकि प्रारब्ध-कर्म से बना देह है। सो, बुरे प्रारब्ध के थर के आने पर विपरीत माहौल असर करेगा, परंतु उपास्य मूर्ति को निर्दोष समझने से वह दोषरहित हो ही गया है।

प्र. 5-130

✷ बिना सोचे-समझे जो-जो करें उसका आगे फल नहीं मिलता। भगवान द्वारा ही कल्याण है और कुछ चाहे कितना भी करा हो, लेकिन उपासना में ठीक नहीं हो, तो उसका मोक्ष नहीं होता। बाकी सब कुछ तो धर्म, अर्थ और काम के लिए है।

प्र. 5-131

✷ 'स्वामिनारायण' मंत्र जपने से तो रोग मिट जाए, सांप ने डंसा हो तो ज़हर उतर जाए और काल, कर्म माया से रहित हो जाए।

प्र. 5-132

✷ हरिशंकरभाई ने पूछा कि वचनामृत में बताये साधु को पहचान नहीं पाये हैं, उसका क्या करना? तब बोले कि यह बात कही नहीं जा सकती—यदि कहने जायें तो पिटाई हो व अवगुण आए ! सो, जैसे समझते हो वैसा समझना और बरामदे में घोड़ा घुमा लेना। वह क्या? तो यज्ञ करने वाले दसों दिशाओं में घोड़ा फिरा कर, जीत कर यज्ञ की पूर्णाहुति करते हैं। यूं जिसने दस इन्द्रियों रूप दस दिशाएं जीती हैं, यानि—जिसकी वृत्ति किसी विषय में खींची नहीं जाती हो, वैसे संत में जुड़ जायें तब उसका ज्ञानयज्ञ पूरा हो गया ! यूं करना वह बरामदे में घोड़ा घुमा कर यज्ञ करने जैसा है।

प्र. 5-134

✷ महापूजा में बैठते समय बोले कि—यह जो बैठा है उसके हाथ में सब कुछ है और सब कुछ उसी में है।

प्र. 5-135

✷ ब्राह्मण का लड़का ब्राह्मण कहलाता है, बनिये का लड़का बनिया कहलाता है; इसी तरह हमारी तो पुरुषोत्तम की उपासना है, सो अक्षररूप हो गए हैं। इसलिए स्वयं का स्वरूप 'अक्षर' मानना।

प्र. 5-136

✷ जैसा शब्द सुनते हैं वैसा जीव होता है। रज, तम और सत्त्व ये देह के भाव हैं। वह तो होंगे ही। भूख लगे, प्यास लगे, दुःख-सुख हो वो देह के भाव हैं और मन तो नील बंदर जैसा चंचल है। वह उछल-कूद करता रहेगा और हम तो इससे पर क्षेत्रज्ञ हैं। सो, देह इन्द्रिय—अंतःकरण के इन भावों को अपने में मानना नहीं। हम तो इनसे पृथक् हैं; इसलिए इनसे हारना नहीं चाहिए, बल्कि लड़ाई लेते रहना चाहिए।

प्र. 5-137

✷ अंत्य. प्रकरण का दूसरा तथा वरताल का पाँचवाँ वचनामृत पढ़वा कर बात करी कि अष्टांग योग, व्रत, दान, तप ये सब करने के बावजूद भी जीव में गंद रही ! फिर भगवान ने साधुरूप ले कर जीव को शुद्ध किया। स्वयं में तो भले ही माया हो, लेकिन उपास्य मूर्ति में माया नहीं समझे, तो उसका मोक्ष हो चुका समझना।

प्र. 5-138

✷ यज्ञ में महाराज ने स्वरूपानंदस्वामी को कहा कि—लोग बहुत इकट्ठे हो गये हैं, सो हमारी लाज जाएगी, सीधा-सामान कम पड़ेगा। तब वे बोले ब्रह्म की लाज नहीं जाती; लाज यदि जाएगी तो लक्ष्मीजी की जाएगी।

प्र. 5-139

✷ स्वरूपानंदस्वामी को कहा कि आप करिश्में बहुत करते हो? तब बोले कि—इसमें क्या?

प्र. 5-140

✷ स्वरूपानंदस्वामी को बीमारी होने पर महाराज ने पूछा कि तुम्हें बहुत तकलीफ हो रही है क्या? तब स्वरूपानंदस्वामी बोले कि—टट्टू दुबला है, पर अस्वार तो ताजा है—खूब बलवान है।

प्र. 5-142

✷ महाराज व ये साधु सबसे पर हैं और समर्थ हैं, फिर भी वेद की मर्यादा में रहते हैं व दूसरे अवतारों की तरह चरित्र नहीं करते, ताकि दूसरों को गुण आये और बहुत जीवों का कल्याण करना है, सो मर्यादा में रहते हैं। वर्ना उन्हें स्वयं को तो कोई बाधा नहीं है।

प्र. 5-143

✷ उपासना से मोक्ष होता है। सिर्फ धर्म, वैराग्य और आत्मनिष्ठा मोक्ष नहीं कर पायेंगे। ऐसे साधु और कहीं पर नहीं हैं तथा ऐसा जोग मिलना भी दुर्लभ है। ज्ञान नहीं हो तो जिन्हें पूजने हैं वे रह जाएं और दूसरे पूजे जाएं। भगवान का मूल प्रतिमा व तीर्थ है तथा गृहस्थ का मूल संतान है।

प्र. 5-144

✷ बड़प्पन तो महाराज को पुरुषोत्तम जाने व आज्ञा पाले उसकी है। प्रगट हो तब तो सभी आज्ञा में रहें, परंतु दूर जाने पर—बाद में आज्ञा ठीक-ठाक पालें वे सच्चे माने जायें।

प्र. 5-145

✷ जूनागढ़ के तो महाराज जमानती हुए हैं।

प्र. 5-146

✷ सौ मन का तवा अत्यधिक तेज गर्म करा हो और उस पर सौ घड़े भी पानी डालें तो भी तवा ठंडा नहीं होगा, किसी धोध में डालने पर ठंडा होगा। वैसे ही यह समागम धोध जैसा है और फिलहाल कल्याण यूं होता है कि जैसे चार महीने लगातार बारिश हुई हो उसमें तवा गर्म नहीं रहता, वैसा कल्याण होता है।

प्र. 5-147

✷ अभिनिवेश हुआ हो उसे वेद कहें, गुरु कहें तब भी वो मानेगा नहीं और पंच विषय का अभिनिवेश तो गुरुरूप गोविन्द प्रगट साक्षात् मिलने से ही टल जाता है और सभी से परे का विहद् ऐसा अक्षरधाम पा लेता है। इसलिए ऐसा मौका मिलने पर भी यदि कसर रह गई तो उसे पछताना रहेगा और फिर सुनने वाले होंगे, पर कहने वाले नहीं मिलेंगे। सो, ढोल-नगारे बजा कर, नरक में नहीं जाना।

प्र. 5-148

✷ ज्ञान करते-करते बहक नहीं जाना, ना ही हीनता महसूस करना। समझते हो, वैसे समझना, लेकिन बाहर यूं महिमा नहीं कहना। कहने से महिमा नहीं होती और जो है वह चली जाने वाली नहीं है। महाराज को जो भगवान कहते

थे उनसे वे चिढ़े रहते। पर धीरे-धीरे वचनामृत में अपनी महिमा लिख दी। यूं करना, लेकिन बहक नहीं जाना। बल भरे वचन मानना, लेकिन हल्के वचन मानना नहीं। उस पर नित्यानंदस्वामी ने महाराज के साथ सात दिन तक जो टक्कर ली थी, वह बात करी। यूं महाराज द्वारा डिगाने पर भी वे डिगे नहीं। ऐसा निश्चय करना चाहिए। बात तो हमारी सच्ची है, पर कई हमारी महिमा सह नहीं पाते, सो परेशानी खड़ी करेंगे। सो, बाहर बात नहीं करना और तुम समझते हो, वैसे समझना। लेकिन बहक जाओगे तो दिन निकलते ही दुःख आयेगा और हम तो ऐसा वर्ते हैं कि किसी के पहचानने में नहीं आये। तुम भी यूं वर्तना और भगवान को कर्ता जानना।

प्र. 5-149

✷ भगवान भजने पर लोक का दुःख आए और विपरीत माहौल का दुःख आए, तब भी पीछे डग भरना नहीं, धीरज रखनी। धीरे-धीरे सब दुःख टल जाते हैं। सो, पीछे डग नहीं भरना। वहाँ दृष्टांत दिया कि प्रद्युम्न युद्ध से पीछे नहीं हटा। फिर भगवान के शंख बजाने पर सभी का नाश हो गया। शंख की जगह यह साधु की बातें है, जिससे सारे दुःख नाश हो जायेंगे। सो, धीरज रखना, पीछे हटना नहीं...

प्र. 5-150

✷ हरिशंकरभाई ने पूछा कि वड़वानल अग्नि जैसे साधु को कैसे पहचाने जायें? तब कहा कि 'सत्संगीजीवन' में उनके लक्षण कहे हैं कि 'पुष्पहाराः संर्पाय' यूं जिसे पुष्प के हार सर्प जैसे लगे तथा जिसने भगवान की मूर्ति को अखंड धारा हो और सत्संग शब्द का जो अर्थ बताया है वैसे लक्षण हों एवं बहुत जीवों को भगवान भजते करे व स्वयं शुद्ध रहे, आज्ञा को ज़रा भी लोपे नहीं, ऐसा हो। कोई तो भगवान के बल से बहुतों को भगवान भजाए ऐसा समर्थ हुआ हो, लेकिन खुद चला जाए, ऐसा हो। गोपालस्वामी को जिसने सत्संग कराया वो गुरु भी चले गए। इसलिए यूं बड़प्पन समझना नहीं। यह तो व्यावहारिक बड़प्पन है। लेकिन वचनामृत में समझाया है कि—भगवान का निश्चय हो व आज्ञा पाले वह बड़ा है। यदि वड़वानल अग्नि जैसा न हो, तो इतने सारे लोगों को सत्संग कराए व स्वयं निर्लेप कैसे रह पाये?

यूं ही हमारे मानने से कोई बड़ा नहीं हो जाता। महाराज की आज्ञा के मुताबिक बड़प्पन समझना।

चार प्रकार के प्रश्न में दूसरों ने ध्यान के लिए कहा और महाराज ने बातें करने को कहा।

प्र. 5-152

* पर्वतभाई का नाम ग्रंथ में कहीं नहीं लिखा गया, लेकिन वे अतिशय बड़े थे।
प्र. 5-153

* सभी प्रकार की बातें जिससे समझी जाएं उसे सबसे बड़ा समझना। सभी सत्संगियों से जीव न जोड़ पायें, लेकिन दो जनों के साथ तो जीव जोड़ ही देना। उसके सिवा कहीं माल न माने वह जीव जोड़ा कहलाए। दूसरों का संग तो देह से भले हो।
प्र. 5-154

* महाराज ने वचनामृत में स्वयं का जो वर्तन कहा है—वह तो उनके मुक्त का ही कहा है यूं समझना और पुरुषोत्तम व धामरूप अक्षर इन दोनों को तो उससे पर समझना। महाराज को तो अपार-अपार ही समझना।
प्र. 5-156

* स्वयं की बात करी कि संवत् 1859 की साल में हमने भादो के महीने में पहली बार महाराज के दर्शन करे थे। तब महाराज ने मेरे सामने देखा और मैंने महाराज के दर्शन करे, इतने में ही निश्चय हो गया—प्रतीति आ गई।
प्र. 5-157

* उपासना और आज्ञा दोनों रखना। उपासना व ध्यान में 'निश्चय' है और आज्ञा ब्रह्मरूप मानने की है। इससे मूल अज्ञान जो कि कारण देह है, उसका नाश होता है और ऐसा तो सतयुग में भी किसी ने नहीं करा है।
प्र. 5-159

* हरिशंकरभाई ने पूछा कि ज्ञान से निर्लेप रह पाते हैं या विषय न भोगने से निर्लेप रह पाते हैं? तब बोले कि ज्ञान से निर्लेप रह सकते हैं, परंतु मन, इन्द्रियाँ व देह—ये तीनों प्रकार से पतिव्रता भाव चूक जाता है। इनमें से दो प्रकार से तो हमसे पले ऐसा नहीं है। सो देह से पालना; तो तीनों प्रकार से हमने पाल लिया !
प्र. 5-160

* जिसे कुछ चाहिए ही नहीं उसे दुःख नहीं आता और भले ही चाहिए लेकिन निर्मानी रहे तो भी दुःख नहीं आए। संशय व भोलापन—इन दो कारणों से दुःख आता है।
प्र. 5-161

* आज्ञा में रहे वह भले ही दूर रहा हो, फिर भी मेरे करीब है और आज्ञा में नहीं रहता हो वह पास में होगा तो भी दूर है। चाहे कैसा ही ज्ञानी होगा, प्रीति से जुड़ा

होगा या बड़ा होगा, परंतु आज्ञा का उल्लंघन करेगा तो सत्संग में नहीं रह पायेगा। वहाँ दृष्टांत दिया कि उड़ाने से पतंग दूर चली जाती है, लेकिन डोरी हाथ में है तो वह पास ही है। यूँ आज्ञारूपी डोरी हाथ में है, तो वह महाराज के करीब ही है।

प्र. 5-162

✷ मनजीभाई ने पूछा कि–भगवान के दर्शन हों वह अधिक है या ज्ञान द्वारा स्थिति करनी अधिक है? तब कहा कि दर्शन की अपेक्षा ज्ञान द्वारा स्थिति करनी अधिक है। इस पर पर्वतभाई, कृपानंदस्वामी, मुक्तानंदस्वामी वग़ैरह जो कि ज्ञान की स्थिति को पाये थे, उनकी बात करी कि उन्हें समाधि नहीं होती थी और 'दर्शन' भी नहीं हुआ; पर पर्वतभाई फिलहाल हम जैसा समझते हैं वैसा समझते थे। सो, स्वयं को ब्रह्मरूप मानना और मेरे भीतर भगवान विराजमान हैं ही यूं मानना, वह ज्ञान की स्थिति है और वह अधिक है। इसमें विघ्न नहीं है। सच्चिदानंदस्वामी वग़ैरह समाधि से मूर्ति देखते जरूर थे, परंतु उन्हें भी दुःख आया वह बात करी। सो अपनी समझ, कृपानंदस्वामी की तरह छिपाये रखनी व प्रेम का आवेग नहीं रखना चाहिए।

प्र. 5-164

✷ ऐसी बातें और कहीं नहीं होती। विषय खोटे हो रहे हैं और वासना जैसी दिखाई देती है वह तो देह के भाव हैं.....

प्र. 5-165

✷ धर्म सत्संग में रखता है
और
वैराग्य से जगत नाशवंत है वह दिखाई पड़ता है।
फलस्वरूप जगत में बंधते नहीं
और
ज्ञान–'आत्मनिष्ठा' से देह के सुख-दुःख परेशान नहीं कर जाते,
लेकिन
मोक्ष तो उपासना से ही होता है।

प्र. 5-166

✷ अंतःकरण को शेखचिल्ली के मंसूबे जैसा नहीं रखना। सिर्फ एक भगवानरूपी खम्बा दृढ़ रखना, पर कई आधार नहीं रखना। कल्याण के लिए आसरा व प्रीति दो ही हैं। आज्ञा तथा नियम पालता है वही आत्मनिष्ठ है, पर जो नियम नहीं पालता उसे आत्मनिष्ठ नहीं जानना।

प्र. 5-167

✷ आत्मज्ञान से कैवल्यार्थी हुआ हो, तो भी विचलित हो सकता है। लेकिन जिसे यूं हो कि मैं प्रगट भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं—ऐसी दृढ़ता जिसे हुई हो उसे किसी से डर नहीं रहता। काल, कर्म, माया, देवऋण, पितृऋण, मनुष्यऋण सभी से छूट कर वह भगवान को पा गया है। इस लोक का सुख-दुःख मिथ्या है और व्यवहार है उसमें सुख-दुःख तो आए, लेकिन जिस दिन रोटी न मिले उस दिन हमें कहना।
जिसे रोटी की आमदनी बनाये रखनी हो, वह दसवाँ-बीसवाँ भाग सेवा का निकाले।

प्र. 5-168

✷ बिना बारीश दो साल दाने पूरे किये हैं और बरसात के आसार तो नहीं लगते, पर सत्संगी के लिए बरसाते हैं।

प्र. 5-169

✷ इन सभी ने भगवान भजने जन्म लिया है और सब पुराने हैं, लेकिन नए नहीं हैं। सो ही यहां आ पाये हैं। भगवान व साधु में वृत्ति नहीं जुड़ पाती, पर स्त्री में खींची जाती है, वह तो भगवान की माया का बल है और कुछ नहीं।

प्र. 5-170

✷ मैं कुटुम्ब का नहीं, लोक का नहीं, देह का नहीं, मैं तो भगवान का हूँ—यूँ मानना और इस समागम के बिना तो और कहीं जा बैठेंगे परंतु महाराज के पास नहीं जा पायेंगे।

प्र. 5-171

✷ भजन करते-करते नींद आ जाती है व इन्द्रियाँ विराम को पा जाती हैं और जब जगते हैं तब भजन होता है—यूं ख्याल पड़ता है।

प्र. 5-172

✷ लाखों-करोड़ चीटियों का झुण्ड निकला हो, तो उसमें छोटी-बड़ी पता नहीं चलतीं। ऐसे ही माहात्म्य से जब दृष्टि विशाल होती है तब अच्छा-बुरा विषय निगाह में नहीं आता और देह लिया है, सो भोगेगा तो सही।

प्र. 5-173

✷ सत्य, हितकारी और प्रिय वचन बोलना और सहज भाव से कहना पर, आग्रह नहीं रखना।

प्र. 5-174

* महाराज यूं बैठते थे। आठों धाम देखे, लेकिन ऐसे साधु कहीं नहीं हैं और उनके दर्शन करना तो भगवान भी चाहते हैं और इस साधु में तो भगवान रहे हैं।

प्र. 5-176

* जिसका संग हो उसके गुण आते हैं। सो भगवान तथा साधु का संग रखना और दूसरों से तो जैसे भीमसेन को धृतराष्ट्र मिला था वैसा रखना। स्वाद वग़ैरह में 'अति' हो उसमें दुःख है। सो 'अति' नहीं होने देना—अति सर्वत्र वर्जयेत्।

प्र. 5-178

* कृपानंदस्वामी वग़ैरह बड़े साधु जितना हम में बल नहीं है। सो, बड़े साधु से बहस न करके ग्यारह नियम पालना। तो उन जैसे बलवान हो जाएंगे। यह संग ऐसा है। इस संग में उपासना, धर्म वग़ैरह सभी हैं, कुछ बाकी नहीं है। उस पर गढडा के मध्य प्रकरण का त्रेसठवाँ—बल पाने का वचनामृत पढ़वाया।

प्र. 5-179

* अपने मनमाने साधन करते हैं, तब तक मन का राज्य टलता नहीं है। इसलिए भगवान व साधु कहें वैसा करना। ग्यारह नियम में रहना। इससे जड़ नष्ट होती है, जिससे कि फल-फूल नहीं आते। बल से नहीं जीत पाते, पर करामात से जीत पायेंगे। इस बात पर सारंगपुर का सातवाँ वचनामृत 'नैमिशारण्य' का पढ़वाया।

प्र. 5-180

* इस साधु के संग से सभी बड़प्पन को पाये हैं और अक्षर मुक्त भी उपासना से हुए हैं। निरंतर बैठ कर भजन करें—ऐसा कोई हो, तो उसका व्यवहार चलाना मेरी जिम्मेदारी है।

प्र. 5-181

* भगवान तथा साधु की बातों से शब्द का देह बंधता है और उससे भगवान भज सकते हैं। स्वयं की समझ छोड़ कर भगवान तथा साधु की समझ से चलना।

प्र. 5-182

* स्वरूपनिष्ठा, ज्ञाननिष्ठा, आत्मनिष्ठा और धर्मनिष्ठा—इन चार प्रकार की निष्ठा में से यदि एक स्वरूपनिष्ठा दृढ़ हो, तो बाकी तीनों उसके अन्तर्गत आ जाती है।

प्र. 5-183

* मुक्त, मुमुक्षु, विषयी और पामर—ये चार प्रकार के भक्त हैं। उसमें जो पामर हैं वह कोई पदार्थ के लिए व करिश्मे के लिए भगवान को भजता है। विषयी है

वह इस लोक के विषय-सुख का तो त्याग करे, परंतु स्वर्ग आदि के उत्तम सुख की इच्छा करता है और जो मुमुक्षु है वह स्वयं की आत्मा के कल्याण के लिए भगवान भजता है। 'मुक्त' है वह माया के भाव से छूट कर भगवान की मूर्ति की ही इच्छा रखता है। इन चारों में भी उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ यूं भेद हैं।

प्र. 5-185

✷ अजामेल को संत का संग हुआ और उसे जब नियम रखने के लिए कहा तब बोला कि–मेरे से पलेगा नहीं। तब भी संत ने अनुग्रह करके उसके लड़के का नाम 'नारायण' रखवा कर भी कल्याण करा। इसलिए भगवान मिले हैं, सो कुछ करना बाकी रहा नहीं है।

प्र. 5-186

✷ ये सारी बातें सुन कर इतना ही समझना है कि मैं तो आत्मा हूँ, अक्षर हूँ, ब्रह्मरूप हूँ, सुखानंद हूँ और देह, इंद्रियों, अंतःकरण, परिवार–ये सभी मेरे नहीं हैं और मैं उनका नहीं हूँ। मैं तो भगवान का हूँ व भगवान मेरे हैं। कई प्रकार की बातें सुन-सुन कर यही समझना है और भगवान जब पृथ्वी पर पधारते हैं तब राजसी, तामसी, अधम–उन सभी का उद्धार कर देते हैं। सो, ऐसा जोग व संग फिर मिलने वाला नहीं है।

प्र. 5-190

✷ प्रियव्रत को कई संतान हुईं व ग्यारह अर्बुद तक राज्य करा; फिर भी आत्माराम व महाभागवत संत कहलाये ! गृहस्थाश्रम में रह कर भी कथा में से विराम को वे नहीं पाये तथा साधु से लगाव टला नहीं। सो बड़े कहलाये। महाराज प्रहलाद्जी व प्रियव्रत की खूब प्रशंसा करते थे।

प्र. 5-191

✷ धर्मादि से अधिक ध्यान है और उससे अधिक ज्ञान है व सत्पुरुष की मर्जी में रह कर उसे राजी करना–वह उससे भी अधिक है। इस एक में ही तीनों आ गए। भगवान की महिमा जानने पर अपने आप सहज ही लगाव हो जाता है और लगाव होने पर मर्जी में रह पाते हैं। सो यह 'चिंतामणि' हाथ आई है, उसे छोड़ना ही नहीं। देह को तो भगवानमय कर देना।

प्र. 5-192

✷ भगवान तो बहुतों को मिले हैं, लेकिन ऐसी मौज किसी ने नहीं कराई और यह जोग तो बहुत दुर्लभ है। ऐसा जोग तो बार-बार नहीं मिलेगा; क्योंकि फिलहाल तो साक्षात् भगवान का जोग है और फिलहाल जो घड़ी या पल जा

रही है, वह खूब दुर्लभ है। सो भगवान बिना और कुछ रखेगा, वह असद्‌गति को पायेगा।

प्र. 5-194

✷ यह साधु अनादि मूल अक्षर हैं। उनमें दिव्यभाव-मनुष्यभाव एक समझना। यह तो अजन्मा है, गर्भ में आए ही नहीं है व उनकी रीत तो नट की माया की भाँति समझनी। ये तो महाराज के संकल्प से यहां दिखाई देते हैं। अक्षरधाम से भी जिस मुक्त को कसर टालने भगवान यहाँ लाए हों, उसे गर्भवास भोगना तो पड़ता है व उसके गुणों को भगवान दबाए रखते हैं तथा दोष को अधिक उभार कर केवल जीवदशा में रख कर कसर टालते हैं। इसलिए ऐसे भक्त को प्रथम लिखें—इनको सरीखे नहीं समझना और जिसे कसर टालने भगवान साथ में लाए हों, उसे तो भगवान के आसरे का बल समझना।

प्र. 5-195

✷ महाराज ने बाईस वर्ष बाद स्वयं का स्वरूप जैसा है, वैसा कहा और हम बेबस हो जाते हैं।

प्र. 5-196

✷ ..... कुम्हार हांडी बनाते समय अंदर की तरफ से हाथ से सहारा देता है और बाहर से ठोकता है। उसी प्रकार हमें अंदर के सहारे की जगह पर महिमा समझनी और बाहर के मार की जगह पर 'साधन' समझना।

प्र. 5-197

✷ भगवान का माहात्म्यसहित निश्चय होने पर कुछ करना शेष रहता नहीं है। हाँ, माहात्म्य की आड़ में पाप नहीं करना और हमें प्रगति होती दिखाई नहीं पड़ती है, लेकिन सब कुछ धीरे-धीरे होता जाता है और यही रीत है। जैसे बाजरे के पौधे में पहले दाने नहीं दिखाई पड़ते, परंतु बाली आती है, बाद में दाने दिखाई पड़ते हैं, यूं होता है।

प्र. 5-198

✷ प्रभु मिले हैं, सो किसी बात की चिंता नहीं है और संकल्पों यानि विचारों को ज्ञान से उड़ा देना। तप से क्रोधी बनते हैं। पहले दुर्वासा ऋषि वग़ैरह तप कर-कर के क्रोधी हुए थे......

प्र. 5-199

✷ भगवान के भक्त का दोष विचारें तो जीव भ्रष्ट हो जाता है। सो गुण विचारना और नारद आदि को जो लांछन लगे कहे जाते हैं, वे तो विपरीत संजोग के कारण

लगे और भगवान की माया का बल है, यूं समझना। वर्ना ये सभी तो सयाने थे, बड़े थे व कई जीवों का कल्याण किया है, उन गुणों का विचार करना।

प्र. 5-201

✷ परछाईं को पहुंच नहीं पाते, यूं ही विषय का पार नहीं आता। इसलिए ज्ञान हो, तभी सुख होता है।

प्र. 5-202

✷ भगवान हैं, वे एक के अंक के बराबर हैं और साधन हैं वे शून्य की जगह हैं। आगे एक लगाये बिना कितने भी शून्य लगायेंगे तो कोई कीमत नहीं बनती....

प्र. 5-203

✷ आज्ञा और उपासना–यह दो रखना। वैराग्य और आत्मनिष्ठा तो किसी में ज्यादा होगी और किसी में थोड़ी होगी।

प्र. 5-204

✷ मंदिर में दर्शन करते समय बोले कि–इस मूर्ति से ऊपर कोई नहीं है, यूं समझना। हमारे कहने पर भी भटक नहीं जाना और हम तो माहौल देख कर या किसी जीव के कल्याण के लिए भले ही कुछ कहें। वह हमारा भी मानना नहीं। उस पर नित्यानंदस्वामी का दृष्टांत दिया कि महाराज के पलटाने पर भी अटल रहे। आखिर प्रसन्न होकर महाराज ने हार दिया।

प्र. 5-205

✷ सब कुछ यहीं है और यहां जो अक्षरधाम है, उसमें भगवान हैं......

प्र. 5-206

✷ ज्ञान प्रलय करने से बढ़ कर कोई बड़ी बात नहीं है। इसलिए ज्ञान प्रलय करना। जितना ज्ञान प्रलय किया, उतनी माया से मुक्ति है और यह करे बिना बड़प्पन तो मिले, परंतु माया से मुक्ति नहीं मिलेगी। यह ज्ञान प्रलय क्या? प्रकृति के कार्यमात्र को हृदय में से निकाल कर ब्रह्मरूप होना, गुणातीत होना। फिर कुछ करना बाकी नहीं रहता है और महाराज का सिद्धांत भी यही है।

प्र. 5-207

✷ भगवान के भक्त के लिए विषय नहीं हैं। उसे तो भगवान की आज्ञा में रहना है। सो सावधान रह कर आज्ञा में ही रहना।

प्र. 5-208

✷ बकरे से लेकर हाथी तक बड़ा हो तो वह भी बंधन में रहता है, परंतु सिंह बंधन में नहीं रह सकता। उसी प्रकर जो मुमुक्षु हैं, वे माया के बंधन में नहीं

रह सकते। सो, इस जोग में जो आए हैं, उन भगवान के भक्त को मनुष्य जैसे नहीं समझना।

प्र. 5-209

✷ भगवान और साधु दो ही रखने। वह गहने रख कर रुपये देने के समान है। यूं यह दो रख कर व्यापार करना।

प्र. 5-212

✷ पाँच गुण युक्त संत यदि नहीं मिल पाये, तो एक-एक गुण सीख लेना और पाँच गुणों युक्त यदि एक संत मिल जाये, तब तो पूर्णाहुति हो गई !

प्र. 5-213

✷ सिर के नीचे से तकिया निकाल देते हुए बोले कि फिर इसकी आदत पड़ जाती है। किसी चीज़ की आदत तो केवल एक सहजानंदस्वामी महाराज को नहीं पड़ सकती, बाकी सबको तो पड़ जाये।

प्र. 5-214

✷ तीन जने सुखी हैं। एक तो–
  * बड़े साधु कहें सो करता है वह
  * दूसरा जो मन की ना माने, ऐसा ज्ञानी
    तथा
  * तीसरा जिसे कुछ चाहिए ही नहीं वह।
    आशा हि परमं दुःखं, निराशा परमं सुखं।
    ये तीन सुखी हैं।

प्र. 5-215

✷ 'जिसके कारण यह सारा जगत है, उसे कोई नहीं जानता।' भगवान मनुष्य रूप में हों और उन्हें पहचाने–वही समाधि है तथा धर्मवान भी वही है। यूं सभी अंग उसमें आ गए। बातें करने से बहुतों को निश्चय होता है, सो बातें करना, वह अधिक है.... उपासना व आज्ञा दो का बल रखना और आज्ञा नहीं पालने से दुःख आता है। दृढ़ निश्चय रखना, जो पर्वत की भांति अटल रहे। इन्द्र ने पाँच ब्रह्म हत्या की थीं, परंतु निश्चयरूपी मूर्ति धारने से टल गई ! एक-एक विषय गिरनार पर्वत जैसा है, जो टल नहीं सकता, पर निश्चय तथा आशरे का बल रखना....

प्र. 5-216

✷ पेड़ या पशु के देह से संबंध में आये हों या मनुष्य देह में सीधा-सामान दिया हो या राह दिखाई हो–यूं कई प्रकार से संस्कार पड़े होंगे, उन सभी का काम हो जायेगा।

प्र. 5-217

✷ फिलहाल तो महाराज के दर्शन करने से जैसा मोक्ष होता था, वैसा ही मोक्ष होता है। ज्ञान तो उन दिनों से फिलहाल अधिक वृद्धि को पाया है और अभी जो हरिभक्त हैं उनसे मिले हुए का जो कोई दर्शन करेगा उसका भी एवं ऐसे ही सौ साल तक कल्याण होगा। उसके बाद किसी मुक्त को भेजेंगे और कल्याण का मार्ग वैसा ही खुला रहेगा।

प्र. 5-218

✷ ....लोक तो चाहे कुछ भी कहे, वह मानना नहीं व अपने-अपने धर्म में रह कर प्रभु को भजना और दूसरा सब कुछ किसी और हेतु से होगा, यूँ समझना।

प्र. 5-219

✷ कोटि कल्प से विषय भोगने की आदत पड़ी है। वह खड्डा भरा जा सके ऐसा नहीं है। उसे पूरने का सभी शास्त्रों में एक ही उपाय बताया है—'निजात्मानं ब्रह्मरूपं'—यह एक ही श्लोक है।

प्र. 5-220

✷ व्यासजी ने बहुत तप किया, बहुत शास्त्र पुराण लिखा और खुद भगवान थे, तब भी शांति नहीं हुई ! फिर नारदजी के वचन से श्रीमद् भागवत रचा और उसमें प्रगट भगवान व भगवान के भक्तों के गुणों का गान किया, तब परम शांति हुई। सो हमें भी वैसा करना चाहिए।

प्र. 5-221

✷ हमें भगवान तथा साधु मिले हैं और पहचाने गए हैं। इससे अधिक कुछ करना शेष रहा नहीं है। फिर भी, शांति नहीं होती उसकी वजह यह है कि विषय में आसक्ति है और मनमानी करी जाती है व आज्ञा नहीं पाल पाते एवं अज्ञान—ये तीनों के कारण शांति नहीं होती।

प्र. 5-222

✷ लोहा, लकड़ी, पत्थर तथा सोने की बेड़ियाँ कभी टूट कर टल जाएं, लेकिन पंचविषय की बंधनरूप बेड़ी टले ऐसी नहीं है। अग्नि-सूर्याग्नि, जठराग्नि तथा प्रलय काल की अग्नि एवं महाप्रलय की अग्नि में भी वासना खाक नहीं हुई और बड़े-बड़े ऋषियों ने साठ हजार वर्ष तक तप किया तथा देह पर तो मिट्टी के ढेर जम गये पर वासना जली नहीं। ऐसी जो वासना—वह तो ज्ञान प्रलय होने पर जलती है। भगवान की मूर्ति का ध्यान व आज्ञा पालने से वासना-लिंग देह का नाश हो जाता है। यह बात सौ जन्म में भी कही ना जाये और समझ में भी नहीं आए, ऐसी है।

प्र. 5-223

✷ वाघा खाचर ने पूछा कि संपूर्ण हुए कैसे कहा जाये? तब बोले कि–आत्मा और परमात्मा दोनों का ज्ञान हो जाए और छठा निश्चय कहा है, ऐसा हो तब पूर्णता पाई कही जाए और यह बात तो उपदेशक यदि निर्दोष हो और हमें उसका विश्वास हो, तो ही हो सकती है। वर्ना तो साधन करते-करते भगवान की कृपा दृष्टि होने पर बहुत समय बाद समझ में आए।

प्र. 5-224

✷ तपस्या करके खाक हो जाए तो भी भगवान लेने नहीं आए और झूले पर सोता रहे, दूध, शक्कर, खीर खाए व दो नौकर सेवा करने वाले हों तथा कमाने वाले दूसरे हों उसे अंत समय पर विमान में बैठा कर ले जाएं। ये सुख पूर्व के संस्कार से हैं। उसी प्रकार विमान भी प्रारब्ध से ही होता है।

प्र. 5-225

✷ कोई मजदूरी कर-करके मर जाये तो भी उसे खाना नसीब नहीं होता और किसी को तो कुछ न करने पर भी रुपये सामने से चले आते हैं। इसे पूर्व का प्रारब्ध कहा जाता है।

प्र. 5-226

✷ आज हमारी चलती है, सो कोई नाम नहीं ले सकता और दूसरों की चलती नहीं, सो उन्हें दुःख है।

प्र. 5-227

✷ भगवान के सिवा और संकल्प उठें तो अंगारे के दाग-सी हमें जलन नहीं होती, परंतु उपासना के प्रताप से सभी दोष टल गए हैं। सो, मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे स्वामी हैं, इतना भाव रखना। शरीर-शरीरी तथा कारण-कार्य एवं अन्वय-व्यतिरेक के वचनामृतों का अर्थ समझे बिना उत्तर नहीं करना, वर्ना बाधा आयेगी। इसलिए हमें तो स्वामी-सेवकभाव रखकर उपासना दृढ़ रखनी, जिसमें कोई बाधा ही नहीं है।

प्र. 5-229

✷ धर्म में रहना, त्याग रखना, तप करना तथा नियम पालने इत्यादि साधना स्वयं की भलाई के लिए व दूसरे मुमुक्षु जीव के कल्याण के लिए हैं और हमें तो बहुत बारीक बातें मोटी करके समझानी हैं।

प्र. 5-231

✷ ज्यादा कुछ करना नहीं है। महाराज को भगवान जानकर उनकी आज्ञा में रहना है, सो पूरा हो गया और शास्त्र में इतना ही करने का लिखा है। हम भगवान के हैं, माया के नहीं–यूं मानना।

प्र. 5-234

✷ इस समय हमारा जन्म हुआ है, वह बड़े भाग्य की बात है। सौ वर्ष पहले या सौ वर्ष बाद जन्म हुआ होता और भले ही समाधि होती, तो भी क्या मिल जाता? ये बातें और ऐसे जोग की बराबरी वह नहीं कर पाता। फिलहाल तो धर्म, अर्थ, काम को छोड़कर केवल मोक्ष ही रखा है। यहां जिसे गुण नहीं आता और अवगुण आए उसे असुर जानना और अब की तो अवगुण आए– ऐसी एक भी क्रिया नहीं है। सहज ही गुण आए, ऐसी क्रिया है।

प्र. 5-237

✷ लल्लू जैसा साधु हो, उसका इतना तो माहात्म्य समझना कि उसके दर्शन करने से पाप जल जाएंगे।

प्र. 5-238

✷ भगवान और साधु तो दो पल में कल्याण करें ऐसे दयालु हैं लेकिन इस बात का हमें ख्याल पड़ता नहीं है। सो संग और रुचि अच्छी रखना और संग न पहचान पाओ तो विश्वास रखकर कथा-कीर्तन करके आयु पूरी कर देना।

प्र. 5-239

✷ दसो दिशाओं में घोड़ा घुमा कर यज्ञ करे और कोई उस घोड़े को बांध ले तो विघ्न हो और यज्ञ पूरा नहीं हो पाता व उसका फल मिलता नहीं है। सो अपने घर के आंगन में घोड़ा घुमा कर यज्ञ पूरा करके फल ले लेना चाहिए। फल तो यज्ञ में है और घोड़ा घुमाने से तो कीर्ति बढ़ती है ऐसा है.....

प्र. 5-242

✷ वासना तो यूं टले कि हमारे सत्संग के सभी बड़े-बड़े साधु इकट्ठे हों और श्वेतद्वीप जैसा धाम हो व ब्रह्मा के कल्प जितनी आयु हो, तब जाकर सभी से एक-एक, दो-दो लक्षण सीख पायेंगे; वर्ना तो साधु के सभी लक्षण एक में हों, उसका संग करें तो वासना टल जाए।

प्र. 5-243

✷ 'आज्ञा में नहीं रह पाएं', तो प्रार्थना करके छुटकारा हो जाए, परंतु उपासना का भंग नहीं होने देना। आज्ञा का प्रकरण कड़ा चलाया हो और आज्ञा आए कि गिरनार पर्वत के भीतर से निकल जाओ–ऐसी आज्ञा पालनी तो नामुमकिन है; परंतु आज्ञा का पालन करने गिरनार के पास जाकर माथा टेकना और फिर रास्ता निकले तो पार निकल जाना। वर्ना माथा टेक कर वहां बैठे रहना। यह देखकर भगवान राजी हो जाएंगे।

प्र. 5-244

✷ तप हो पाए ऐसी देह कलियुग में रही नहीं, इसलिए तप करने का लिखा नहीं है। '**कलौ कीर्तनात्**'—कीर्तन, भजन करने से पाप जल जाते हैं और चलते-फिरते स्वामिनारायण का भजन करने से पाप जल जाते हैं।

प्र. 5-248

✷ सत्संग करे उसके सिर से काल, कर्म और माया का डर टल गया। उसके रक्षक भगवान हो गए...

प्र. 5-249

✷ एक तो पुरुषोत्तम और उसके एकांतिक साधु ये दोनों की ही विषय से हार नहीं होगी, वर्ना और कोई तो विषय से निर्लेप रह ही नहीं पाएगा। सो, विषय से दूर ही रहना और भगवान के संग रहना तथा देह को तो अपना रूप मानना ही नहीं। देह को अपनी मानें उसमें सभी दुःख रहे हैं और देह को ना गिने, तो दुःख ही नहीं है।

प्र. 5-250

✷ पुरुषार्थ तथा प्रवृत्ति करने से अकल्याण नहीं होता; वह तो करना, लेकिन पापी का संग नहीं करना....

प्र. 5-251

✷ महाराज थे तब भी वे जैसे थे वैसे नहीं पहचाने गए तथा रघुवीरजी महाराज और बड़े-बड़े साधु थे, वे भी जैसे थे वैसे पहचाने नहीं गए। पीछे से बखान होता है। फिलहाल भी जैसे हैं वैसे साधु पहचाने नहीं जाते। नारायण भक्त ने पूछा कि—भगवान जैसे हैं वैसे क्यों पहचाने नहीं जाते? तब बोले कि—जैसी है वैसी पहचान दे तो मेल नहीं बैठेगा, उल्टा हानि होगी—विरोध होगा। महाराज ने जैसी हैं वैसी जब बातें करीं, तो सभी ने नियम-प्रण छोड़ दिए। फिर महाराज ने कई वचनामृत निकलवा दिए और कहा कि एक भी वचनामृत रखना नहीं है। फिर नित्यानंदस्वामी ने प्रार्थना करके कहा कि—धर्मामृत तथा शास्त्र की मर्यादा को रखते हुए जो होंगे, वे ढूंढ कर लिखेंगे। तब जाकर इतने रहने दिए। इसलिए जैसी है वैसी पहचान दे तो सुमेल नहीं बैठेगा। सो यूं समझना कि महाराज ने जो किया है वह हमारी भलाई के लिए ही किया है, वर्ना अन्यों की तरह अपना हो जाए। उनमें और हममें फर्क रहे नहीं।

प्र. 5-252

✷ सत्संगी जैसा है वैसा पहचाना नहीं जाता, साधु जैसे हैं वैसे पहचाने नहीं जाते और जीव को स्वयं का भी ख्याल नहीं कि मुझे कैसे समर्थ मिले हैं?

त्यागी होकर सिर पर टोपी डाल दी उसमें क्या सुधरा? भगवान और बड़े संत का रहस्य तो समझ नहीं पाते हैं। रहस्य तो यह है कि ब्रह्मरूप होकर प्रीति करना और ये तो सनकी हो गए हैं। त्याग की सनक लग जाए, आसक्ति पर चढ़ जाएं और गप्पे मारने लग जाएं, लेकिन जब तक रहस्य नहीं समझेंगे तब तक क्या सुधरा? और माने कि मैं मेरा भला कर लूंगा। परंतु वह तो बड़े करेंगे, तो ही होगा। महिमा तो ऐसी है कि पंच महापाप जल जाएं और काले सर्प ने काटा हो तो ज़हर चढ़े नहीं, यदि सच में विश्वास हो तो और पिछले साल बिना बरसात के दाने उगाए हैं।

प्र. 5-253

✷ विषय का अंत आए, ऐसा नहीं है। तब बढ़ई माधाभक्त ने पूछा कि वे निर्मूल कैसे हों? तब बोले कि–जिसके निर्मूल हुए हों उसके संग से ज्ञान हो, वैराग हो, विवेक आए और आत्मा तथा देह पृथक समझे तो निर्मूल हो जाए। शुकजी, जड़भरत, जनक, अंबरिष उनके विषय निर्मूल हुए जानना। नदी का, ऋषि का, स्त्री का और विषय का अंत कभी ढूंढना नहीं। वेद और शिक्षापत्री के मुताबिक वर्तना। बेल ऊपर-ऊपर से भले ही सूख जाए, पर यदि मूल में से हरा रह गया, तो ऊपर भी हरा हो जाएगा। मूल में से ही काट दिया हो तो टल जाए और क्रिया तो पूर्व के संस्कार के अनुसार होती है।

'कोई कहे हरि हो गए, कोई कहे होवत हार;
मुक्त प्रगट की प्रीछ बिन, भटकत सब संसार।'

पहले जो हो गए उनके लिए रोते हैं और आगे होंगे उन्हें ढूँढते हैं, परंतु यह प्रगट है उसे कोई मानता नहीं है।

प्र. 5-254

✷ राजा तप करने गया तो उसको थाल आता था और एक गरीब तप करने गया तो उसे रोटी नसीब होती थी। तब वह गरीब बोला कि वह तप करता है और मैं भी तप करता हूँ, पर मुझे ऐसा क्यों मिलता है? तब कहा कि तुझे घर पर रोटी नहीं मिलती थी, परंतु तप के प्रताप से रोटी नसीब हुई है और राजा तो थाल छोड़कर आया है, सो उसे थाल देना पड़ता है।

प्र. 5-255

✷ यह जीव जब तक भगवान की शरण में नहीं जाता तब तक भले कितना ही करे और देवता बने, ईश्वर बने या चाहे पुरुषादिक के बड़प्पन को पाए लेकिन काल, कर्म, माया, गर्भवास और नरक के कुंड से तरेगा नहीं और जब तक गर्भवास में आना पड़ता है तब तक नरक के कुंड से कहाँ बचा है?

और भगवान की शरण में जाए तब काल, कर्म, माया, गर्भवास और नरक के कुंड का दुःख उसके माथे से टल जाता है।

प्र. 5-257

✷ जिसे उत्तम निर्विकल्प निश्चय हो, उसे कुछ करना नहीं रहता।

प्र. 5-270

✷ निजी ताकत से तो जीव विषय से अलग हो ही नहीं सकता। जितना विषय छोड़ने जाए-उतना दुगुना बंध जाए। हाँ, बड़े साधु द्वारा—उनकी सहायता से तो विषय से छूटा जा सकता है। वहाँ दृष्टांत दिया कि दूध और पानी किसी से पृथक् नहीं हो पाता, लेकिन हंस द्वारा पृथक् हो सकता है।

प्र. 5-271

✷ ऐसी बात स्वयं के मन में समझ कर रखना और किसी को कहनी-करनी ही नहीं। हां, बहुत आग्रह हो उसे करनी और मितभाषी बनना। यह जो मूर्ति दिखाई देती है, ऐसी की ऐसी मूर्ति अक्षरधाम में है, तनिक भी फर्क नहीं है। उसमें तेज ज्यादा दिखाई देता है, इतना ही फर्क है। यह प्रगट मूर्ति जो दिखाई देती है वही मूर्ति अक्षरधाम में है, यूं समझने में जितनी कसर है, इतनी कसर है। सो दिव्यभाव, मनुष्यभाव एक समझना, तो पूरा हो गया। दूसरा तो उसके पीछे-पीछे अपने आप समझ जाएगा।

प्र. 5-273

✷ व्यवहार है सो सब करना, पर मन से उससे अलग रहना। धृतराष्ट्र और भीम मिले थे, यूं व्यवहार में देह से रहना। क्षत्रिय जैसा लगाव रखना। मन और जीव को व्यवहार से पृथक् रखना। उनमें जो घुसने जाये उसका त्याग करना। व्यवहार में हर्ष-शोक हो, वही माया का रूप है। देह से राज भी करना पड़े, लेकिन जीव तो भगवान में ही जोड़ देना। मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं, यूं जीव जोड़ देना। भजन कम हो, कीर्तन कम गाए जाएं उसकी फिकर नहीं है।

प्र. 5-274

✷ स्वयं के कल्याण में निगाह बराबर रखनी और अन्य का कल्याण तो जैसा-तैसा करना।

प्र. 5-275

✷ पढ़ाई करनी वह तो बुद्धि पाने के लिए—सत्संग में रहने के लिए तथा उम्र काटने के लिए है।

प्र. 5-276

✷ भगवान ने कर्म का एक कुठार खोल कर आधा कुठार विषय का किया है और आधे कुठार की इन्द्रियां बनाई हैं। यूं वे सजाति हैं, सो उनका आपस में मेल है और जीव तो उससे पृथक-विजाति है, सो उसमें रसरूप नहीं होता है।

प्र. 5-277

✷ रूपराम ठाकर ब्राह्मण को खाना नहीं खिलाता, पर हरिजन सत्संगी को खिलाता।

प्र. 5-278

✷ तीन देह, तीन अवस्था, तीन गुण से पृथक् होकर गुणातीत होना तथा ब्रह्मरूप होना और इन तीनों की क्रिया से पृथक् रहना। वह तो देह का और अवस्था का गुण है, सो उसे मानना नहीं और उसे खोटा समझना। यह विवेक तो बड़े संत के अलावा और किसी की समझ में आयेगा ही नहीं।

प्र. 5-279

✷ हमें जो सत्संग मिला है, वैसा किसी को मिला नहीं है। फिलहाल जैसे साधु हैं वैसे नहीं पहचाने जायें, हरिभक्त नहीं पहचाने जायें, भगवान का स्वरूप जैसा है वैसा समझ नहीं पाए और आज्ञा ठीक नहीं पाली जाये, उतनी खोट रहेगी।

प्र. 5-280

✷ इस लोक का सुख कैसा है—तो सोलह दिन श्राद्ध के और फिर बंदूक की गोलियां—वैसा है।

प्र. 5-281

✷ भिखारी जैसे किसी को माँ कहे, बहन कहे, दादी कहे, मौसी कहे—वह सब कुछ दाने इकट्ठे कर लेने के मतलब से है। यूं हमें मन से, सभी से अलिप्त रहना है। ऐसा छल करें तो भगवान भजे जाएं।

प्र. 5-282

✷ उपासना ही भक्ति है। चाहे कैसे ही बड़े विषय देख कर उसमें मोहित नहीं हों, ऐसी समझ रखना और 'प्रकृति-पुरुष' तक के विषय को विष्ठा जैसे जानना, परंतु मन से उसमें माल नहीं मानना।

प्र. 5-283

✷ बुरानपुर में बहनों के पास दो महीने हमने बातें करी थी, लेकिन वहां मन जाने दिया नहीं था, क्योंकि मन हमारा अपना नहीं है। सो उससे अलग रहना।

प्र. 5-284

* मुक्तानंदस्वामी ने महाराज को पूछा कि–शांति कैसे हो? तब महाराज ने स्वयं के चरित्र कह कर बताए और संकल्प किया कि–
  हमारा दर्शन करे उसका मोक्ष हो और यदि हमारा दर्शन नहीं हो व हमारे साधु का दर्शन करे उसका मोक्ष हो तथा उनके दर्शन भी न हों, तो हमारे हरिभक्त का दर्शन करे–उसके मटके का पानी पीए, उसके घर की रोटी खाए, उसका भी मोक्ष करने का संकल्प किया है। शांति होने का यह उपाय बताया, पर मुक्तानंदस्वामी इस बात को समझ नहीं पाये, लेकिन शांति तो उससे ही होगी और किसी साधन से शांति होती ही नहीं है। हाँ, साधन से विघ्न नहीं आयेंगे।
  प्र. 5-287

* घनश्यामदासजी महाराज के साथ लगातार रहे, लेकिन कुछ समझे नहीं और कसर भी खूब ही रह गई। फिर महाराज ने कहा कि–तुम्हें अभी नहीं समझ आएगा। आगे ऐसे साधु मिलेंगे, वे समझाएंगे। आज वे सब बातें समझा कर कसर टाली।
  प्र. 5-289

* मनुष्यभाव-दिव्यभाव एक समझ कर भगवान का निश्चय किया हो, फिर चाहे भगवान स्वयं भी हमें डिगाने व पलटाने का प्रयत्न करें तो भी डिगना नहीं–जैसे नित्यानंदस्वामी नहीं डिगे !
  प्र. 5-290

* भगवान भजने देह धारी थी, परंतु गलत संग के पाश लगे हैं। फिर, निकालने वाले मिले तब निकले और अभी भी कईयों का वैसा ही है। स्वयं के बल से तो निकल ही नहीं पायेंगे, क्योंकि संग का पाश तो लगेगा ही।
  प्र. 5-291

* देह अपनी नहीं है और अपनी मान बैठे हैं वही अज्ञान है। वह अज्ञान तो टले ही नहीं। जिस पर भगवान व बड़े साधु कृपा करें उसका अज्ञान टले !
  प्र. 5-294

* गृहस्थ को जो शोभारूप है, वह त्यागी के लिए दूषण है और त्यागी को जो शोभारूप है, वह गृहस्थ के लिए कलंकरूप है। वैसा ही सुहागिन व विधवा में भी फर्क समझना।
  प्र. 5-295

* जिसका काग़ज़ आया हो वह स्वयं ही मिले और यूं आमने-सामने बैठा हो, तो काग़ज़ में प्रीति नहीं करनी। प्रगट भगवान की मूर्ति के आगे ज्ञान,

वैराग्य, आत्मनिष्ठा यह सब खट्टी छाछ जैसे हैं, उसमें कोई माल नहीं है... यूं एक भगवान के आधार बिना दूसरा सब खारा जल ही है।

प्र. 5-296

- ‘ज्ञान-हुआ’—किसे कहा जाए? तो, शास्त्र सुनकर व किसी से बातें सुनने पर या किसी के संग से मन पलटी ना मार जाए—वह पक्का ज्ञान कहलाए।

प्र. 5-297

- प्रेमी भगवान में भी चिपके व और कहीं भी चिपके। ज्ञानी हो वह और कही चिपके नहीं। हाँ, कोई गांठ पड़ जाए तो ज्ञानी भी चिपके। उस पर भीष्मपिता का दृष्टांत दिया कि वे ज्ञानी थे लेकिन पक्ष के कारण (गलत) चिपके।

प्र. 5-299

- सूर्य के बराबर किसी को कहा नहीं जा सकता, यूं इन भगवान को भी किसी की उपमा नहीं दी जा सकती.....

प्र. 5-300

- ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा और गद्दी पर हाथ रखते हुए इशारे से बताया कि—यह साधु और यह भगवान धरती पर कभी आए नहीं हैं और कभी आएंगे भी नहीं। हाँ, दूसरे आएंगे।

प्र. 5-301

- शिक्षापत्री में सभी संशयों के हल लिखे हैं, फिर भी किसी को कुछ संशय हो तो पूछ लेना। परंतु इसका अर्थ क्या व उसका मतलब क्या, यह पूछना-करना रहा नहीं है। अब तो दाने खाकर भजन किया करना है। शिक्षापत्री पालेगा उसे देह का दुःख नहीं आयेगा।

प्र. 5-303

- बहुत पुण्य से यह संबंध मिला है और ये सब हमारे साथ रहे हैं, लेकिन जिसे जितनी समझदारी होगी उसे उतना सुख आता होगा। इसमें पुराने-नए का कोई मेल नहीं है।

प्र. 5-308

- इस साधु के प्रति जिसे जितना सद्भाव इतनी सद्वासना और जितना असद्भाव उतनी असद्वासना है, यूं समझना।

प्र. 5-310

- कई कहते हैं कि यह तो कुछ जानता नहीं है, इसे तो कुछ आता नहीं है; लेकिन गद्दी पर किसने बिठाया है—उसका उसे कुछ पता भी है क्या? सब

कुछ जानते हैं, तब ही गद्दी पर बैठाया है। यह तो सत्संग का कुसंग बताया। अब मोक्ष की बात करते हैं–

'एकोपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथे न तुल्यं।
दशाश्वमेघी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥'

इस श्लोक का अर्थ किया कि–प्रगट को एक प्रणाम करने से मोक्ष होता है और यहां तो करोड़ों प्रणाम करे हैं, लेकिन तब भी मोक्ष होने की प्रतीति आती नहीं है और शांति होती नहीं है। परंतु, यदि प्रगट भगवान को जानकर व पहचान कर एक प्रणाम करें, तो भगवान के धाम में जाए और मोक्ष की प्रतीति हो जाए व शांति भी हो जाए।

प्र. 5-311

✷ जिसे कल्याण चाहिए उसके घर में रुपए हों तो बाई-भाई दोनों के दो मंदिर कराना। इससे उसका कल्याण हो चुका।

प्र. 5-312

✷ बारिश तो भगवान बरसाते हैं, इन्द्र तो रूठा हुआ है, सो बरसता नहीं है व काल भी चिढ़ा हुआ है। परंतु दया आने से बरसात करी है।

प्र. 5-313

✷ पैसे में, घर में, स्त्री में और देह में माल मानना नहीं। दाने तो भगवान देंगे। वह संजोकर आयु पूरी करनी। जिसके घर में काम करने वाला हो व रुपए हों, उसे तो दाने खाकर कथावार्ता सुननी और जिसके पास कुछ ना हो उसे कोष जोड़ कर काम करने लग पड़ना; फिर भगवान भजना। यह देह तो पानी का, पृथ्वी का, आकाश का बना है और उसमें मिल जाएगा और सभी बड़ों को बातें सुनने एक महीना यहीं रहना, ऐसी आज्ञा है।

प्र. 5-314

✷ सत्संग के नियम ना पाल पाएं तो तिलक नहीं करना और कहना कि मैं सत्संगी नहीं हूं व मुझसे नियम पलता नहीं है। लेकिन भगवान व साधु सच्चे हैं। यूं कहेगा उसका अंत में मोक्ष होगा, परंतु सत्संग में रह कर शिक्षापत्री नहीं पालेगा, उसे दुःख आएगा और सुख से भगवान नहीं भजे जाएंगे।

प्र. 5-315

✷ वशराम भक्त को फोड़े का अत्यधिक दुःख देखकर मुझे बुखार आ गया। फिर फोड़ा फूटा, तब सुख हुआ। यूं दया की अधिकता दर्शाई।

प्र. 5-317

✷ यदि दुकाल पड़ेगा तो सत्संगी दुःखी होंगे, फिर क्या हम दाना खा पायेंगे? नहीं खा पायेंगे।

प्र. 5-318

✷ गय राजा जैसा राज करना है, वह होगा। उसके बाद अब जो दो करोड़ जने हैं, उससे अधिक व्यक्ति भगवान भजेंगे व रघुवीरजी महाराज जैसे आचार्य करने हैं।

प्र. 5-321

✷ प्रहलाद् ने दस हजार साल तक नरनारायण भगवान के साथ युद्ध किया, लेकिन जीत नहीं पाए, फिर नारदजी के वचन से छः महीने में भक्ति से वश किया।

प्र. 5-322

✷ म.प्र. का नौवाँ वचनामृत पढ़ने की आज्ञा की और बोले कि इस वचनामृत में जैसा कहा है वैसे महाराज को पुरुषोत्तम जानेगा और सत्संग से निकल भी जाएगा, तो भी अक्षरधाम में जाएगा व सत्संग में रहता होगा, धर्म पालता होगा तथा भले ही उर्ध्वरेतस ब्रह्मचारी होगा, परंतु यदि महाराज को पुरुषोत्तम नहीं जानेगा, तो दूसरे लोक में जाएगा।

प्र. 5-325

✷ प्रगट मूर्ति के सिवा अन्य किसी में माल नहीं है.....

प्र. 5-326

✷ भगवान की स्मृति रखनी सबसे अधिक है। भगवान तो हमारे जीव में बैठे ही हैं। वे देह छोड़ते समय दिखाई देते हैं। जिसे स्मृति रहे, वह तो सभी साधन के अंत को पा चुका समझना। इस बारे भरतजी की बात करी।

प्र. 5-327

✷ शुद्धि के लिए तप और अनुवृत्ति, ये दो साधन हैं। उसमें अनुवृत्ति–वह अधिक है। वह करते-करते आत्मा और परमात्मा दो ही रखने हैं।

प्र. 5-328

✷ हमें ज्ञान सीखना तो आता ही नहीं है और वैराग्य तो है नहीं। सो, मैं भगवान का और वे मेरे–यूं मानना। लगाव तो पंद्रह आना स्त्री में है और एक आना हमारे में है। कल्याण तो उनकी शरण में गये हैं सो वे समर्थ हैं, इसलिए वे करेंगे। यह उनका बड़प्पन है।

प्र. 5-330

✷ खाली हों तो भगवान की मूर्ति लेकर-धार कर बैठना। वह मूर्ति यानि क्या? तो भगवान की कथावार्ता और ध्यान-भगवान की मूर्ति है।

प्र. 5-331

✷ देह है, सो निद्रा, काम, स्वाद, लोभ—ये सभी देह के साथ होते हैं। सो उन्हें तो देह के साथ ही रहने देना। कोई व्यसन रखता है, अफीम-हुक्के का स्वाद रखता है, लोभ रखता है, ये सभी सुख जैसे लगते हैं, लेकिन वे तो देह को दुःख दें—ऐसे हैं।

प्र. 5-332

✷ भगवान भजने में तीन विघ्न हैं, एक तो लोक का कुसंग, सत्संग का कुसंग और इन्द्रियों अंतःकरण का कुसंग। सो इन सभी के प्रपंच में आना नहीं। सत्संग में यदि कुसंग का योग हो जाए, तो जो ब्रह्मरूप हो उसे भी देहरूप कर डाले और सत्संग में अच्छे संग का योग हो जाए, तो जो देहरूप हो उसे ब्रह्मरूप कर दे।

प्र. 5-333

✷ बातें करने से मक्खी में से सूर्य हो और सूर्य में से मक्खी हो, यदि बातें करनी आती हों तो। बातन की बात बड़ी करामत है। यह सारा सत्संग बातों से हुआ है और यह सब कुछ बातों से है और कुछ नहीं।

प्र. 5-336

✷ सत्संग, साधु और भगवान जैसे मिले हैं, वैसे पहचाने नहीं जाते और मनुष्यभाव रहता है। जैसा लाभ हुआ है, वैसा लाभ भी पहचाना नहीं जाता। मनुष्यभाव में दिव्यभाव है, वह माना नहीं जाता। कोई व्रत ले, पर यह समझ नहीं पायेंगे; क्योंकि जड़ ही नहीं है तो शाखायें कहाँ से होंगी?

प्र. 5-337

✷ मुक्त हो, वह किसी से दबेगा नहीं और संघर्ष करा करता है, परंतु संकल्प की पकड़ में फंसता नहीं है।

प्र. 5-341

✷ हर एक को अपनी देह अच्छी लगती है, गांव अच्छा लगता है, देश अच्छा लगता है—यही तो दैव की माया का बल है।

प्र. 5-342

✷ एक के मंडल में लड्डू की रसोई बने और एक के मंडल में नहीं हो—वह एक गुण आया और अखंड ध्यान करे, वह भी एक गुण आया व त्रेसठ गुण बाकी रहे। परंतु, किसी प्रकार से **साधु की पहचान हो जाए, तो उसमें सभी गुण आ जाएं।**

प्र. 5-343

- गोपालस्वामी के पास साठ साधु थे। उनमें से चार साधु देने के लिए कहा, तब बोले कि मेरे पास साधु तो दो ही हैं !

प्र. 5-344

- सच में जीव सौंप कर, उन का होकर कोई रहे तो शेर का माल गीदड़ खा नहीं पायेगा।

प्र. 5-345

- जैसे हैं, वैसे पहचानने कठिन हैं और पहचाने गए तो समागम में रहना कठिन है व समागम में रहे तो जीव सौंप कर अनुवृत्ति में रहना कठिन है। दो आने भी किसी का पक्ष तो रह ही जाये।

प्र. 5-347

- जैसा है वैसा कह दें, तो तुरंत माना नहीं जाएगा। सो, मन को (भक्तिरूप क्रिया में) लगाए रखना, तो धीरे-धीरे बल मिलेगा और समझ आएगी।

प्र. 5-348

- कोई कहेगा कि–'मुझे जैसा है, वैसा कह दो–मैं वैसे करूँगा', लेकिन जो बड़े हैं–वे जानते हैं कि भले ही बोल रहा है, पर इससे होगा नहीं और कोई कहे नहीं, लेकिन उसका भी जानते हैं कि यह कहता नहीं, पर उससे हो पाएगा।

प्र. 5-349

- उपासना, आज्ञा और साधु पहचानने–ये तीन बातें अवश्य चाहिएं। आज्ञा में धर्म, नियम, व्रत, दान, तप सब कुछ आ जाता है।

प्र. 5-351

- साधु सच्चे हैं, उसमें असाधु की बुद्धि हो, वह विपरीत भावना है; यह बात अटपटी-सी है। उस साधु को अन्य साधु की अपेक्षा देखें तो पहचाना जाए...

प्र. 5-352

- अत्यं प्रकरण का तैंतीसवाँ वचनामृत पढ़वा कर बात करी कि ऐसे बड़े हैं, फिर भी विषय के संग में ठीक रहा जाता है, वह बड़ों की कृपा दृष्टि से है।

प्र. 5-353

- किसी बात की अंतर में चिंता आए तो भगवान पर डाल देना। उनमें अनंत कलाएं हैं। उस पर बली तथा वृन्दा को ठगने की बात करी।

प्र. 5-354

✷ गोंडल के हरिजन ने कहा कि क्या पाप किये होंगे जो महाराज के दर्शन नहीं हुए? तब स्वामी ने उसे कहा कि पुण्य करे होंगे जो आज ये दर्शन हुए; वर्ना तो खूब पाप करते।

प्र. 5-356

✷ **भोजने छाजने चिंता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।**
हमें तो माला फेरनी। रोटी तो भगवान देंगे और कईयों को दी है, जो हम जानते नहीं और अब भी कईयों को दे रहे हैं।

प्र. 5-357

✷ जहर के लड्डू खाने में अच्छे लगेंगे, परंतु थोड़ी देर बाद गला घुटने लगेगा। वैसा यह कारोबार है।

प्र. 5-358

✷ गृहस्थ आत्मा का ज्ञान जानता नहीं है, लेकिन जिसे भगवान व बड़े साधु के साथ लगाव है, उसे कुछ करना रहा नहीं है। उस पर मध्य प्रकरण का नौवाँ तथा वड़ताल का ग्यारहवाँ वचनामृत विचारना। इन दोनों का अर्थ एक ही है।

प्र. 5-360

✷ कोटि-कोटि साधन करें, लेकिन यूँ बातें करनी, उसके बराबर नहीं हो सकता। दूसरे से तो इतनी प्रवृत्ति में बातें हो ही नहीं सकतीं।

प्र. 5-361

✷ महिमा समझ में आती है, फिर भूल जाते हैं! सो, सौ बार पढ़ कर यदि समझा हो, तो फिर भूल नहीं पायेंगे। महाराज के समय लगाव बहुत था और अब ज्ञान अधिक है एवं खूब संस्कारी जीव आए हैं, सो साधु में तुरंत लगाव हो जाता है।

प्र. 5-362

✷ नींद आए तो सो जाना चाहिए। सुरंगे उड़ाने की बात करी तथा किसी प्रकार शत्रु को जीत पाएं ऐसा नहीं हो, तो अंग्रेज़ ने लड़ाई में सफेद धुआँ फैलाकर दुश्मन की फौज को छल से मार दिया, यूं छल करना और मन को जीतना।

प्र. 5-363

✷ कई प्रकार के पापी जीव हैं, उन्हें यह ज्ञान देना—वही भगवान का प्रताप है।

प्र. 5-364

✷ मध्य का अट्ठाइसवाँ वचनामृत पढ़वा कर बात करी कि जीव तो गलती कर जाये, लेकिन कई युक्तियाँ करके उसे भगवान के मार्ग में टिकाए रखना, पर उसे

गिरने नहीं देना—यही बड़ों का बड़प्पन है। इस वचनामृत में महाराज ने अपना स्वभाव बताया हो, ऐसा भाव भी आता है। यूँ महिमा की बहुत ही बातें करी।

प्र. 5-365

✷ भगवान और भगवान के भक्त की सेवा—ये दोनों में ही माल है।

प्र. 5-366

✷ मुमुक्षु जीव को ज्ञान भी हो सकता है और लगाव भी जरूर हो; परंतु सत्संग में जो कुसंग है—वह उसका बुरा कर डालता है, सो उसे पहचानना।

प्र. 5-367

✷ जूनागढ़ में जितने भी हैं, उन सभी को मारकूट कर चाहे कैसे भी ठीक-ठाक करके पार उतारना है। तो, तुम्हें तो क्यों फिकर करनी? कितने दिन जीना है?

प्र. 5-369

✷ सुखी होने के रास्ते—

एक तो किसी प्रकार भगवान में जुड़ा हुआ हो तथा संत से जुड़ा हो या आत्मज्ञान से इन्द्रियाँ संयम में रखी हों और भगवान का निश्चय सहित वैराग्य हो व संस्कारी जीव हो—ये पाँच प्रकार से सुखी रहा जाए। सो स्वयं का अंतर टटोल लेना कि इनमें से मेरा कौन-सा अंग है। इसे समझ कर सुखी रहना।

प्र. 5-370

✷ भगवान के अक्षरधाम की ओर दृष्टि—वह अलौकिक दृष्टि है और प्रकृति के कार्य की ओर देखना—वो लौकिक दृष्टि है। उसमें भगवान का निश्चय—वह सच्ची अलौकिक दृष्टि है।

प्र. 5-371

✷ संत से जुड़ा हो उसका यह लक्षण कि उसकी मर्जी में खुश रहे और संत कहे उतना ही काम करे, लेकिन अधिक करे नहीं। ऐसे की फिकर तो संत को रहती है। सो—पाँच दिन, महीना, दो महीने या चार महीने पर वे उसकी खबर रखा करें और यूँ खबर नहीं रखें तो वह बिगड़ जाए। सो खबर रखते हैं। तमोगुणी को तो कुछ सूझेगा नहीं; अतः उसे तो उसी की मर्जी पर चलने दें तो ठीक रहे, पर मरोड़े तो परेशान हो जाए।

प्र. 5-372

✷ यह मौका फिर नहीं आएगा। यह मौका तो कपड़े तक जला कर भी ताप लेने जैसा है।

प्र. 5-373

✷ मैं मंदिर में रहूँ, तब किसी को बाहर जाने का मन नहीं करता है और मैं बाहर जाऊँ, तब कोई मंदिर में नहीं रहता है।

प्र. 5-375

✷ त्रिकमदासजी कोठारी ने कहा कि पर्दा नहीं रखना, आपके स्वरूप की पहचान करवाना। तब बोले कि पहचान कराई है, पर्दा नहीं रखते। आग का शोला देखना है क्या? लेकिन प्रकाश के गोले में कोई माल नहीं है, ऐसे ही ठीक है।

प्र. 5-377

✷ सोया रहता हो लेकिन भारी भगवदी हो। वह हम पहचान नहीं पायेंगे। उस पर गाँव भादरा के डोसाभाई की बात करी कि–वे मंदिर में आकर सोये रहते और दूसरे आधी रात तक जगते। लेकिन उनके बराबर नहीं हो सकते।

प्र. 5-378

✷ हमें महाराज ने कहा कि गाँव में से आए हो क्या? तब कहा कि नहीं महाराज नदी की ओर से आए। यूँ माहौल देख कर बोलने से महाराज प्रसन्न हुए और मुक्तानंदस्वामी के पूछने पर 'कथा अच्छी है' यूं कहा; तब महाराज ने कहा कि कल भी इसे साथ लेते आना। यूं माहौल देख कर–सोच समझ कर बोलना।

प्र. 5-381

✷ यह जीव देह का गुलाम है। वह देह की सेवा करता है और भगवान के पास भी देह की रक्षा करवाता है तथा भगवान को (अपनी) देह की सेवा में रखता है। देखो, प्रहलाद् ने देह की रक्षा को रक्षा नहीं मानी और नहीं मांगी।

प्र. 5-384

✷ लगातार इस देह में और इस लोक में सुख बरते तो यह जीव कब उदास हो– ऐसा है? सो किसी प्रकार का कठिन माहौल बने, वह भी ठीक है।

प्र. 5-385

✷ भादो शुक्ल प्रतिपदा के दिन संध्या आरती होने के बाद संतों के नाम का प्रकरण चला। उसमें बड़े-बड़े भी एक-एक नाम के दो, चार, पाँच तो थे ही। वे स्वयं कहते जाएं और दूसरे पूछते जाएं। उसमें गुणातीतानंद नाम तो एक ही। फिर कथा में संत के नाम आये, तब किसी ने पूछा कि आपके नाम का कोई दूसरा था? तब स्वयं बोले कि वह तो एक ही, बाकी दूसरे सभी नाम के साधु

और संन्यासी बहुत। फिर संग करने के बारे पूछा, उसमें प्रथम जागाभक्त का कहा, फिर दूसरों के नाम लिए।

प्र. 5-387

✷ एक दिन स्वामी महापूजा में बैठे थे, वहाँ अंतरवृत्ति करके समाधि में उतर गए व दो-तीन दिन तक उठे नहीं और फिर स्वयं उठ कर पालथी बाँध कर बैठे। फिर सभी को पता चला कि स्वामी समाधि में से जाग गए हैं। तुरंत मंदिर के सभी जनों की सभा इकट्ठी हो गई और सब स्वामी के सामने एक टक देखते रहे। तब स्वामी बोले कि फिलहाल जैसे देख रहे हो, ऐसे ही वृत्ति यदि रहे, तो कर्मग्रंथि, संशयग्रंथि, ममत्वग्रंथि, इच्छाग्रंथि, अहंग्रंथि वग़ैरह सभी ग्रंथियाँ पिघल जाएं।

प्र. 5-388

✷ एक बार महाराज अक्षर ओरडी में विराजमान थे। वहाँ मैं महाराज के दर्शन के लिए गया। तब शुकस्वामी मेरे लिए आसन ढूँढने लगे। तब महाराज ने कहा इनका बड़प्पन आसन से नहीं है। ये तो अनादि से बड़े हैं और दूसरों का तो आसन से छोटापन-बड़प्पन है। यूं यह साधु का नहीं है, ऐसा कहा।

प्र. 5-389

✷ कई कहते हैं कि व्यवहार की बात में स्वामी समझते नहीं हैं और मैं भी जो ना माने उसे यही कहता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता। परंतु व्यवहार तो स्वामी ने चलाया, ऐसा किसी को भी आया नहीं है।

प्र. 5-390

✷ भगवान की तरह बड़े साधु भी जानी-जान हैं और ये तो भगवान जैसे हैं, सो सारी बातें जानते हैं। सो उनके प्रति का मनुष्यभाव छोड़ कर प्रार्थना करनी, क्योंकि वे तो सर्वज्ञ हैं।

प्र. 5-391

✷ अक्षर का तेज यदि दिखाई दे, उसमें भी माल नहीं मानना है। सो ऐश्वर्य में तो माल मानना ही नहीं है। उस बारे क्या कहना? अक्षर का तेज़ सुखरूप तो है, लेकिन पुरुषोत्तम (महाराज) की मूर्ति के आगे वह कुछ भी नहीं है। यूं समझे इसे 'उपासना' कही जाये।

प्र. 5-392

✷ केशवजीवनदासजी ने स्वामी को कहा कि प्रागजी वग़ैरह आपको मूल अक्षर कहते हैं, वह मेरी समझ में नहीं आता है। मैं विश्वासी हूँ, तो जैसा है वैसा

कहो। तब स्वामी ने कहा—मैं मूल अक्षर हूँ ऐसा तू मानना। दूसरा कोई यदि अक्षर होगा, तो वह मेरी और उसकी झंझट ठहरी। तू मेरा भरोसा कर। यूं दो-तीन बार कहा।

प्र. 5-393

✷ महाराज स्वधाम पधारने वाले थे, तब मुझे एकांत में मिले, जैसे श्रीकृष्ण और उद्धवजी एकांत में मिले थे वैसे।

प्र. 5-394

✷ किसी ने स्वामी को कहा कि ये प्रागजी को आपने ऐश्वर्य दिया है, सो वह बहक गया है। इसलिए उसका भी शेखजी की तरह करो। तब स्वामिजी बोले-यह ऐरा-गैरा नहीं हुआ है, यह तो पाताल तक पहुँची हुई नींव है, सच्ची प्रसन्नता का फल है।

प्र. 5-395

✷ इसमें (ऐसे सत्संग) में रह कर नियम नहीं पाले, उस बारे क्या कहें? और नियम तो एकदम ठीक रखे, पर मंदिर, आचार्य और बड़े साधु की निंदा करे उससे बुरा कौन ! वह तो उससे भी बुरा है।

प्र. 5-396

✷ सूरत से चल पड़े और कीम नदी में उतरे। वहाँ ब्रह्मचारी ने अच्छे-अच्छे मिष्ठान थाल में भर कर रखे। तब महाराज बोले—हम त्यागियों को ऐसा भारी-भारी खाना ठीक नहीं है। फिर सत्तु मँगाया। उसमें भी शक्कर तक नहीं डाली और नमक व सत्तु खाया।

प्र. 5-397

✷ बातें करके दूसरों की द्रव्यादिक की आसक्ति छुड़वाते हैं, लेकिन हम त्यागियों को भी यह करना है।

प्र. 5-398

✷ ग्राम्यवार्ता-इधर उधर की बातें किया करें और उसमें दूसरों को भक्ति मनवायें ! बड़े हों उन्हें कोई कह भी नहीं सकता और कोई यदि कहने भी जाये तो भक्ति की आड़ लेकर उसे झाड़ दें। ऐसे में से जिसे अपने आपको बचा लेना हो, उसे कई बहाने निकाल कर वहाँ से खिसक जाना।

प्र. 5-399

✷ 'हृदयग्रंथि' तो एक स्त्री को ही कहा है। दूसरे किसी विषय को 'हृदयग्रंथि' लिखते नहीं हैं। सो, इसके दोष तो एकांतिक संत जानता है। दूसरा, त्यागी

हुआ हो तब भी, उसमें कई प्रकार की सुखबुद्धि रह जाती है और कई बातें (खुल कर) कहने में परेशानी आती है, सो वह कही नहीं जाएं।

प्र. 5-400

✷ दो प्रकार के साधु व सत्संगी हैं। उसमें एक को विषय मिले तो खुश हो जाए और दूसरे को विषय टले तो वह प्रसन्न हो जाए।

प्र. 5-401

✷ घर से जब आते हैं, तो दो प्रकार से खिंचाव होता है। इस लोक का व परलोक का, उसमें से एक रहेगा। परलोक की गरज रहे ऐसे तो विरले ही होते हैं। क्योंकि, ऐसा कहने वाले नहीं मिलते, तो जीव बेचारा क्या करेगा? बाकी, इस लोक में चिपकाए ऐसी बातें बहुत मिल जाएंगी।

प्र. 5-402

✷ .....त्यागी को सिर्फ स्त्री के सिवा दूसरा किस विषय का त्याग है व किस विषय में अरुचि भी है? वह तो भीतर में टटोल कर देखें, तो पता चले और स्त्री का त्याग भी स्थूल रूप से ही है। तब भी उसे दूर से निहार लेते हैं। त्यागी होकर तो बैठे हैं, पर टटोलना कि कितना त्याग किया है?

प्र. 5-403

✷ ऊपर से भगवा पहन लिया है, लेकिन जीव कहाँ भगवा हुआ है? यह भी ख्याल रखना।

प्र. 5-405

✷ 'वासुदेव हरे' बोलने पर जैसे तुरंत उठ पड़ते हैं, यूं किसी काम से बड़े बुलाएँ, तब ना उठा जाये, वह कसर कही जाये।

प्र. 5-406

✷ एक साधु ने कहा—हमारे नसीब में लड्डू नहीं थे और यह तो भगवान के प्रताप से—उनकी इच्छा से मिल रहे हैं, सो खाने में हर्जा नहीं है। तब स्वामी बोले कि यह सोच गलत है, क्योंकि खाना-पीना तो कई विमुख लोगों को भी मिलता है। तब किसी ने दलील करी कि— महाराज भी तो संतों को लड्डू आदि खिलाते थे। तब स्वामी बोले कि—इस बारे यूं समझना कि जीव को महाराज की स्मृति रहे इसलिए खिलाते थे। वर्ना महाराज का ऐसा मत नहीं था कि विषय भोगें।

प्र. 5-407

✷ खा-खाकर मोटा होना और अधिक सोना—ये दो बातें मुझे पसंद नहीं आतीं, क्योंकि ये दोनों काम वासना के हेतु हैं। मन भी खाली रहे तो व्यभिचार करता रहेगा, सो खाली नहीं रखना।

प्र. 5-408

✷ त्यागी की जमात में आने के बाद देहाभिमान बढ़ जाता है और फिर कोई कसनी में ले तब दुःख होता है।

प्र. 5-409

✷ गृहस्थ रुपये-पैसों का भजन करते रहते हैं और त्यागी देह का भजन करता रहता है।

प्र. 5-410

✷ सयाना हो उसे डाँटे तो वह खुश होगा और मूर्ख की तारीफ करने पर वह खुश होगा—यूं महाराज कहते थे।

प्र. 5-411

✷ भगवान व एकांतिक संत—इन दोनों का स्वभाव ऐसा कि इस लोक में उनके बोलने-करने का तालमेल नहीं होता है। बाकी दूसरों का तालमेल प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

प्र. 5-412

✷ बड़े के साथ लगाव हो तो वासना वाले को भी अंतर में सुख आयेगा, वर्ना तो निर्वासनिक हुआ हो, तो भी रुखा है।

प्र. 5-413

✷ लाखों को सत्संग कराए और खुद नरक में जाए ऐसा भी होता है, क्योंकि जीवों का कल्याण हुआ वह तो भगवान ने किया है। जैसे साहुकार का मुंशी जो हुंडी लिखता है, वो स्वीकारी जाती है।

प्र. 5-414

✷ पंचाला के वचनामृत में कहा है कि जैसे-जैसे भगवान का संबंध दृढ़ होता है वैसे सुख होता है। पर, भगवान परोक्ष हो जायें तब कैसे संबंध रहे? तब उत्तर दिया कि—कथा, कीर्तन, वार्ता, भजन और ध्यान—इससे संबंध रखा कहा जाता है और इससे भी अधिक—बड़े संत का संग वह तो साक्षात् भगवान का संबंध कहा जाये और भगवान का ही सुख आए; क्योंकि उसमें भगवान सभी प्रकार से रहे हैं और प्रत्यक्ष थे, तब भी जैसे हैं वैसे नहीं पहचाने गये, तो वह संबंध नहीं कहा जाये व इस प्रकार (तत्त्व से) पहचाने बिना तो प्रत्यक्ष हों तो भी क्या? ठीक वैसे ही, जिस संत में भगवान सभी प्रकार से रहे हैं उसे पहचाने तो आज **प्रत्यक्ष हैं और यूं ना पहचाने तो आज भी** परोक्ष हैं।

तब एक साधु ने पूछा कि—क्या मूर्तियाँ प्रत्यक्ष नहीं हैं? तब स्वामी बोले कि—प्रत्यक्ष भगवान व संत के चरित्र में मनुष्यभाव आए तो जीव अमावस के चन्द्रमा की भांति घट जाता है और दिव्यभाव रखे तो दूज के चन्द्रमा की भांति

बढ़ता जाता है। मूर्तियाँ क्या चरित्र करेंगी जिससे कि अवगुण आए और घटता जाए? सो बोलते-चलते जो भगवान–वही प्रत्यक्ष कहे जाएं। बड़े संत जो हैं वे ही मूर्तियों में ऐश्वर्य रखते हैं। लेकिन मूर्तियाँ, शास्त्र और तीर्थ–ये तीनों मिलकर एक साधु नहीं बना पायेंगे। यूं बड़े संत हों वे मूर्तियाँ, शास्त्र व तीर्थ इन तीनों का निर्माण करें। सो, जिसमें भगवान सभी प्रकार से रहे हों, ऐसे जो संत हैं उन्हीं के द्वारा ही भगवान प्रत्यक्ष हैं।

प्र. 5-415

✷ क्लेश कैसे ना हो? इस प्रश्न का उत्तर किया कि राग, पक्ष और अज्ञान ये तीनों ना रहें, तो क्लेश नहीं आए और इनमें से एक हो तो भी क्लेश होता है।

प्र. 5-416

✷ साधुता के गुण युक्त गृहस्थ भी साधु कहा जाये। कपड़े भगवे कर लिए उससे साधु नहीं कहा जाए।

प्र. 5-417

✷ हर एक बात सुन कर उसी के रूप हो जाना इससे बड़ी तो कोई कसर ही नहीं है। बड़े मुक्तानंदस्वामी वग़ैरह के पास कोई बात करे, तो वे पहले तो सुन लेते, फिर कुछ कहना जरुरी लगे तो बोलते, वर्ना तो बोलें (ही) नहीं। इसकी जड़ 'प्रतिलोम' है।

प्र. 5-418

✷ निवृत्त रहने में तो त्यागी जीत गए और भगवान रखने का लाभ गृहस्थ ले गए। वह क्या? त्यागी को बैठे-बैठे (तैयार) खाने को मिले, चीजें मिलें और कोई उद्यम करना नहीं पड़े। गृहस्थों ने तो प्रगट स्वरूप को पहचाना, सो भगवान रखने में गृहस्थ कामयाब हो गये हैं।

प्र. 5-424

✷ ....यदि निरंतर बातें हों तो यहीं अक्षरधाम मूर्तिमान दिखाई पड़े, सुख आए। लेकिन यह बात कही जाए ऐसी नहीं है। यह तो रात है, सो बोल गए। इसलिए करने जैसा तो बड़े एकांतिक साधु का संग ही है।

प्र. 5-430

✷ यह लिया और यह लेना है, यह दे दिया और यह देना है, यह किया और यह करना है, यह खाया और यह खाना है, यह देखा और यह देखना बाकी है वग़ैरह बातों का अंत आएगा ही नहीं। सो, इससे निवृत्त होकर भगवान भज लेना।

प्र. 5-431

✷ जिसने उत्तम पुरुष का सेवन किया हो, उसे दूसरे किसी की बातों से वैसा सुख नहीं आता। तो उसे क्या करना? तब कहा कि उनकी जो बातें सुनी हों उसे विचारें–पकड़ें और बाकी दूसरों से भी ठीक लगें इतनी ग्रहण करें। यूं गुज़ारा करें और बड़े संत भी तो उसका पोषण करेंगे।

प्र. 5-432

✷ बाकी सब जगह पर माया की झंझट है, पर बद्रिकाश्रम, श्वेतद्वीप और अक्षरधाम–इन तीन जगहों पर माया नहीं है व यहाँ बड़े एकांतिक संत के पास माया नहीं है। बाकी सब जगह पर माया है।

प्र. 5-433

जिस ज्ञान से -
ये साकार प्रगट ब्रह्म में स्थिति हो
(यानि उनके साधर्म्य को पा ले)
उसे 'ब्रह्मविद्या' कही जाए।
ऐसे को महाराज और प्रगट संत के बिना
दूजा कोई आकार नज़र में ही नहीं आता।
उसे 'ब्रह्मविद्याश्रित योगी' जानना।

प्र-९, २४३

...दो सौ लड़कों को मैंने 'ब्रह्मविद्या' पढ़ाई है।
वह एक - एक
मैं करूं वैसा कल्याण करेगा...

प्र-१०, २९०

— मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी

१९५२-२००२
પ્રથમ પ્રભુ ને પછી પગલું. પપ્પા
50
साक्षात्कार स्वर्णजयंती